।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ४५।।

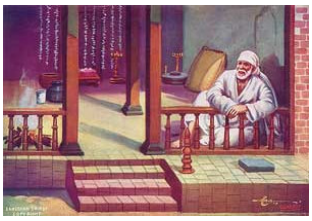

संदेह निवारण

काकासाहेब दीक्षित का सन्देह और आनन्दराव का स्वप्न, बाबा के विश्राम के लिए लकड़ी का तख्ता।

प्रस्तावना

गत तीन अध्यायों में बाबा के निर्वाण का वर्णन किया गया हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब बाबा का साकार स्वरुप लुप्त हो गया है, परन्तु उनका निराकार स्वरुप तो सदैव ही विद्यमान रहेगा। अभी तक केवल उन्हीं घटनाओं और लीलाओं का उल्लेख किया गया है, जो बाबा के जीवनकाल में घटित हुई थीं। उनके समाधिस्थ होने के पश्चात् भी अनेक लीलाएँ हो चुकी हैं और अभी भी देखने में आ रही हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि **बाबा अभी भी विद्यमान हैं और पूर्व की ही भाँति अपने भक्तों को सहायता पहुँचाया करते हैं।** बाबा के जीवन-काल में जिन व्यक्तियों को उनका सान्निध्य या सत्संग प्राप्त हुआ, यथार्थ में उनके भाग्य की सराहना कौन कर सकता है? यदि किसी को फिर भी ऐंद्रिक और सांसारिक सुखों से वैराग्य प्राप्त नहीं हो सका तो इसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? जो उस समय आचरण में लाया जाना चाहिए था और अभी भी लाया जाना चाहिए, वह है अनन्य भाव से बाबा की भक्ति। समस्त चेतनाओं, इन्द्रिय-प्रवृत्तियों और मन को एकाग्र कर बाबा के पूजन और सेवा की ओर लगाना चाहिए। कृत्रिम पूजन से क्या लाभ? यदि पूजन या ध्यानादि करने की ही अभिलाषा है तो वह शुद्ध मन और अन्तःकरण से होनी चाहिये।

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री का विशुद्ध प्रेम अपने पति पर होता है, इस प्रेम की उपमा कभी-कभी लोग शिष्य और गुरु के प्रेम से भी दिया करते हैं। परन्तु फिर भी शिष्य और गुरु-प्रेम के सामने पतिव्रता का प्रेम तुच्छ है और उसकी कोई समानता नहीं की जा सकती। माता, पिता, भाई या अन्य सम्बन्धी जीवन का ध्येय (आत्मसाक्षात्कार) प्राप्त करने में कोई सहायता नहीं पहुँचा सकते। इसके लिए हमें स्वयं अपना मार्ग अन्वेषण कर आत्मानुभूति के पथ पर अग्रसर होना पड़ता है। सत्य और असत्य में विवेक, इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखों का त्याग, इन्द्रियनिग्रह और केवल मोक्ष की धारणा रखते हुए अग्रसर होना पड़ता है। दूसरों पर निर्भर रहने के बदले हमें आत्मविश्वास बढ़ाना उचित है। जब हम इस प्रकार विवेक-बुद्धि से कार्य करने का अभ्यास करेंगे तो हमें अनुभव होगा कि यह संसार नाशवान् और मिथ्या है। इस प्रकार की धारणासे सांसारिक पदार्थोंमें हमारी आसक्ति उत्तरोत्तर घटती जाएगी और अन्त में हमें उनसे वैराग्य उत्पन्न हो जाएगा। तब कहीं आगे चलकर यह रहस्य प्रकट होगा कि ब्रह्म हमारे गुरु के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं, वरन् यथार्थ में वे ही सद्वस्तु (परमात्मा) हैं और यह रहस्सोद्घाटन होता है कि यह दृश्यमान जगत् उनका ही प्रतिबिम्ब है। अतः इस प्रकार हम सभी प्राणियों में उनके ही रुप का दर्शन कर उनका पूजन करना प्रारम्भ कर देते हैं और यही समत्त्वभाव दृश्यमान जगत से विरक्ति प्राप्त करानेवाला भजन या मूलमंत्र है। इस प्रकार जब हम ब्रह्म या गुरु की अनन्यभाव से भक्ति करेंगे तो हमें उनसे अभिन्नता की प्राप्ति होगी और आत्मानुभूति की प्राप्ति सहज हो जायेगी। संक्षेप में यह कि सदैव गुरु का कीर्त्तन और उनका ध्यान करना ही हमें सर्वभूतों में भगवत् दर्शन करने की योग्यता प्रदान करता है और इसी से परमानंद की प्राप्ति होती है। निम्नलिखित कथा इस तथ्य का प्रमाण है।

काकासाहेब का सन्देह तथा आनन्दराव का स्वप्न

यह तो सर्वविदित ही है कि बाबा ने काकासाहेब दीक्षित को श्री एकनाथ महाराज के दो ग्रन्थ (१) श्रीमद्भागवत और (२) भावार्थ रामायण का नित्य पठन करने की आज्ञा दी थी। काकासाहेब इन ग्रन्थों का नियमपूर्वक पठन बाबा के समय से करते आए हैं और बाबा के समाधिस्थ होने के उपरान्त अभी भी वे उसी प्रकार अध्ययन कर रहे हैं। एक समय चौपाटी (बम्बई) में काकासाहेब प्रातःकाल एकनाथी भागवत का पाठ कर रहे थे। माधवराव देशपांडे (शामा)और काका महाजनी भी उस समय वहाँ उपस्थित थे तथा ये दोनों ध्यानपूर्वक पाठ श्रवण कर रहे थे। उस

समय ११ वें स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का वाचन चल रहा था, जिसमें नवनाथ अर्थात् ऋषभ वंश के सिद्ध यानी कवि, हरि,अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन का वर्णन है, जिन्होंने भागवत धर्म की महिमा राजा जनक को समझायी थी। राजा जनक ने इन नव-नाथों से बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछे और इन सभी ने उनकी शंकाओं का बड़ा सन्तोषजनक समाधान किया था, अर्थात् कवि ने भागवत धर्म, हरि ने भक्ति की विशेषताएँ, अंतरिक्ष ने माया क्या हैं, प्रबुद्ध ने माया से मुक्त होने की विधि, पिप्पलायन ने परब्रह्म के स्वरुप, आविर्होत्र ने कर्म के स्वरुप, द्रुर्मिल ने परमात्मा के अवतार और उनके कार्य, चमस ने नास्तिक की मृत्यु के पश्चात् की गति एवं करभाजन ने कलिकाल में भक्ति की पद्धतियों का यथाविधि वर्णन किया। इन सबका अर्थ यही था कि कलियुग में मोक्ष प्राप्त करने का एकमात्र साधन केवल हरिकिर्त्तन या गुरु-चरणों का चिंतन ही है। पठन समाप्त होने पर काकासाहेब बहुत निराशापूर्ण स्वर में माधवराव और अन्य लोगों से कहने लगे कि नवनाथों की भक्ति पद्धति का क्या कहना है, परन्तु उसे आचरण में लाना कितना दुष्कर है? नाथ तो सिद्ध थे, परन्तु हमारे समान मूर्खों में इस प्रकार की भक्ति का उत्पन्न होना क्या कभी संभव हो सकता है? अनेक जन्म धारण करने पर भी वैसी भक्ति नहीं हो सकती तो फिर हमें मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकेगा? ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे लिए तो कोई आशा ही नहीं है। माधवराव को यह निराशावादी धारणा अच्छी न लगी। वे कहने लगे कि हमारा अहोभाग्य है, जिसके फलस्वरुप ही हमें साई सदृश अमूल्य हीरा हाथ लग गया है; तब फिर इस प्रकार निराशा का राग अलापना बड़ी निन्दनीय बात है। यदि तुम्हें बाबा पर अटल विश्वास है तो फिर इसप्रकार चिंतित होने की आवश्यकता ही क्या है? माना कि नवनाथों की भक्ति अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ और प्रबल होगी, परन्तु क्या हम लोग भी प्रेम और स्नेहपूर्वक भक्ति नहीं कर रहे हैं? क्या बाबा ने अधिकारपूर्ण वाणी में नहीं कहा है कि श्रीहरि या गुरु के नामजप से मोक्ष की प्राप्ति होती है? तब फिर भय और चिन्ता को स्थान ही कहॉ रह जाता है? परन्तु फिर भी माधवराव के वचनों से काकासाहेब का समाधान न हुआ। वे फिर भी दिन भर व्यग्र और चिन्तित ही बने रहे। यह विचार उनके मस्तिष्क में बार-बार चक्कर काट रहा था कि किस विधि से नवनाथों के समान भक्ति की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी ?

एक महाशय, जिनका नाम आनन्दराव पाखाड़ था, माधवराव को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वहाँ आ पहुँचे। उस समय भागवत का पठन हो रहा था। श्री. पाखाड़े भी माधवराव के समीप ही जाकर बैठ गये और उनसे धीरे-धीरे कुछ वार्त्ता भी करने लगे। वे अपना स्वप्न माधवराव को सुना रहे थे। इनकी कानाफूसी के कारण पाठ में विघ्न उपस्थित होने लगा। अतएव काकासाहेब ने पाठ स्थगित कर माधवराव से पूछा कि क्यों, क्या बात हो रही है? माधवराव ने कहा कि कल तुमने जो सन्देह प्रगट किया था, यह चर्चा भी उसी का समाधान है। कल बाबा ने श्री. पाखाडे को जो स्वप्न दिया है, उसे इनसे ही सुनो। इसमें बताया गया है कि **विशेष भक्ति की कोई आवश्यकता नहीं; केवल गुरु को नमन या उनका पूजन ही पर्याप्त है।** सभी को स्वप्न सुनने की तीव्र उत्कंठा थी और सबसे अधिक काकासाहेब को। सभी के कहने पर श्री. पाखाड़े अपना स्वप्न सुनाने लगे, जो इस प्रकार है:- '' मैंने देखा कि मैं एक अथाह सागर में खड़ा हुआ हूँ। पानी मेरी कमर तक है और अचानक ही जब मैंने ऊपर देखा तो साईबाबा के श्री-दर्शन हुए। वे एक रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान थे और उनके श्री-चरण जल के भीतर थे। यह सुन्दर दृश्य और बाबा का मनोहर स्वरुप देख मेरा चित्त बड़ा-प्रसन्न हुआ। इस स्वप्न को भला कौन स्वप्न कह सकेगा? मैंने देखा कि माधवराव भी बाबा के समीप ही खड़े है और उन्होंने मुझसे भावुकतापूर्ण शब्दों में कहा कि '' आनन्दराव! बाबा के श्रीचरणों पर गिरो।'' मैंने उत्तर दिया कि ''मैं भी तो यही करना चाहता हूँ, परन्तु उनके श्री-चरण तो जल के भीतर हैं। अब बताओ कि मैं कैसे अपना शीश उनके चरणों पर रखूँ। मैं तो निस्सहाय हूँ।'' इन शब्दों को सुनकर शामा ने बाबा से कहा कि '' अरे देवा! जल में से कृपाकर अपने चरण बाहर निकालिए न।'' बाबा ने तुरन्त चरण बाहर निकाले और मैं उनसे तुरन्त लिपट गया। बाबा ने मुझे यह कहते हुए आशीर्वाद दिया कि अब तुम आनंदपूर्वक जाओ। घबड़ाने या चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। अब तुम्हारा कल्याण होगा। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि एक जरी के किनारों की धोती मेरे शामा को दे देना , इससे तुम्हें बहुत लाभ होगा।''

बाबा की आज्ञा को पूर्ण करने के लिए ही श्री. पाखाड़े धोती लाए और काकासाहेब से प्रार्थना की कि कृपा करके इसे माधवराव को दे दीजिए, परन्तु माधवराव ने उसे लेना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि जब तक बाबा से मुझे कोई आदेश या अनुमति प्राप्त नहीं होती, तब तक मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ। कुछ तर्क-वितर्क के पश्चात् काका ने दैवी आदेशसूचक पर्चियाँ निकालकर इस बात का निर्णय करने का विचार किया। काकासाहेब का यह नियम था कि जब उन्हें कोई सन्देह हो जाता तो वे कागज की दो पर्चियों पर 'स्वीकार-अस्वीकार ' लिखकर उसमें से एक पर्ची निकालते और जो कुछ उत्तर प्राप्त होता था, उसके अनुसार ही कार्य किया करते थे। इसका भी

निपटारा करने के लिए उन्होंने उपर्युक्त विधि के अनुसार ही दो पर्चियाँ लिखकर बाबा के चित्र के समक्ष रखकर एक अबोध बालक को उसमें से एक पर्ची उठाने को कहा। बालक द्वारा उठाई गई पर्ची जब खोलकर देखी गई तो वह स्वीकारसूचक पर्ची ही निकली और तब माधवराव को धोती स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार आनंदराव और माधवराव सन्तुष्ट हो गए और काकासाहेब का भी सन्देह दूर हो गया।

इसमे हमें यह शिक्षा मिलती है कि **हमें अन्य संतों के वचनों का उचित आदर करना चाहिए, परन्तु साथ यह भी परम आवश्यक है कि हमें अपनी माँ अर्थात् गुरु पर पूर्ण विश्वास रख,उनके आदेशों का अक्षरशः पालन करना चाहिए, क्योंकि अन्य लोगों की अपेक्षा हमारे कल्याण की उन्हें अधिक चिन्ता है।**
बाबा के निम्नलिखित वचनों को हृदयपटल पर अंकित कर लो - **इस विश्व में असंख्य सन्त हैं, परन्तु अपना पिता (गुरु) ही सच्चा पिता (सच्चा गुरु) है। दूसरे चाहे कितने ही मधुर वचन क्यों न कहते हों, परन्तु अपना गुरु-उपदेश कभी नहीं भूलना चाहिए।** संक्षेप में सार यही है कि शुद्ध हृदय से अपने गुरु से प्रेम कर, उनकी शरण जाओ और उन्हें श्रद्धापूर्वक साष्टांग नमस्कार करो। तभी तुम देखोगे कि तुम्हारे सम्मुख भवसागर का अस्तित्व वैसा ही है, जैसा सूर्य के समक्ष अँधेरे का ।''

बाबा की शयन शैया-लकड़ी का तख्ता

बाबा अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में एक लकड़ी के तख्ते पर शयन किया करते थे। वह तख्ता चार हाथ लम्बा और एक बीता चौड़ा था, जिसके चारों कोनों पर चार मिट्टी के जलते दीपक रखे जाया करते थे। पश्चात् बाबा ने उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले थे। (जिसका वर्णन गत अध्याय दस में हो चुका है)। एक समय बाबा उस पटिए की महत्ता का वर्णन काकासाहेब को सुना रहे थे, जिसको सुनकर काकासाहेब ने बाबा से कहा कि यदि अभी भी आपको उससे विशेष स्नेह है तो मैं मस्जिद में एक दूसरी पटिया लटकाए देता हूँ। आप सुखपूर्वक उस पर शयन किया करें। तब बाबा कहने लगे कि '' अब म्हालसापति को नीचे छोड़कर मैं ऊपर नहीं सोना चाहता।''

काकासाहेब ने कहा कि '' यदि आज्ञा दें तो मैं एक और तख्ता म्हालसापति के लिए भी टाँग दूँ।''

बाबा बोले कि '' वे इस पर कैसे सो सकते हैं? क्या यह कोई सहज कार्य है? जो उसके गुण से सम्पन्न हो, वही ऐसा कार्य कर सकता है। जो खुले नेत्र रखकर निद्रा ले सके, वही इसके योग्य है। जब मैं शयन करता हूँ तो बहुधा म्हालसापति को अपने बाजू में बिठाकर उनसे कहता हूँ कि मेरे हृदय पर अपना हाथ रखकर देखते रहो कि कहीं मेरा भगवज्जप बन्द न हो जाए और मुझे यदि थोड़ा-सा भी निद्रित देखो तो तुरंत जागृत कर दो, परन्तु उससे तो यह भी नहीं हो सकता। वह तो स्वयं ही झपकी लेने लगता है और निद्रामग्न होकर अपना सिर डुलाने लगता है और जब मुझे भगत का हाथ पत्थर-सा भारी प्रतीत होने लगता है तो मैं जोर से पुकार उठता हूँ कि '' ओ भगत''। तब कहीं वह घबड़ा कर नेत्र खोलता है। जो पृथ्वी पर ही अच्छी तरह बैठ और सो नहीं सकता तथा जिसका आसन सिद्ध नहीं है और जो निद्रा का दास है, वह या तख्ते पर सो सकेगा?'' १ अन्य अनेक अवसरों पर वे भक्तों के स्नेहवश ऐसा कहा करते थे कि ''**अपना अपने साथ और उसका उसके साथ।''ढ**

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

१. या निशा सर्वभूतानां तस्यांजागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।। - गीता २/६९

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ४६ ।।

बाबा की गया यात्रा-बकरों की पूर्व जन्मकथा

इस अध्याय में शामा की काशी, प्रयाग व गया की यात्रा और बाबा किस प्रकार वहाँ इनके पूर्व ही (चित्र के रुप में) पहुँच गए तथा दो बकरों के गत जन्मों के इतिहास आदि का वर्णन किया गया है।

प्रस्तावना

हे साई! आपके श्रीचरण धन्य हैं और उनका स्मरण कितना सुखदायी है! आपके भवभयविनाशक स्वरुप का दर्शन भी धन्य है, जिसके फलस्वरुप कर्मबन्धन छिन्नभिन्न हो जाते हैं। यद्यपि अब हमें आपके सगुण स्वरुप का दर्शन नहीं हो सकता, फिर भी यदि भक्तगण आपके श्रीचरणों में श्रद्धा रखें तो आप उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव दे दिया करते हैं। आप एक अज्ञात आकर्षण शक्ति द्वारा निकटस्थ या दूरस्थ भक्तों को अपने समीप खींचकर उन्हें एक दयालु माता की नाईं हृदय लगाते हैं। हे साई! भक्त नहीं जानते कि आपका निवास कहाँ है, परन्तु आप इस कुशलता से उन्हें प्रेरित करते हैं, जिसके परिणामस्वरुप भासित होने लगता है कि आपका अभय हस्त उनके सिर पर है और यह आपकी ही कृपा-दृष्टि का परिणाम है कि उन्हें अज्ञात सहायता सदैव प्राप्त होती रहती है। अहंकार वे वशीभूत होकर उच्च कोटि के विद्वान् और चतुर पुरुष भी इस भवसागर की दलदल में फँस जाते हैं। परन्तु हे साई! आप केवल अपनी शक्ति से असहाय और सुहृदय भक्तों को इस दलदल से उबारकर उनकी रक्षा किया करते हैं। पर्दे की ओट में छिपे रहकर आप ही तो सब न्याय कर रहे हैं। फिर भी आप ऐसा अभिनय करते हैं, जैसे उनसे आपका कोई सम्बन्ध ही न हो। कोई भी आप की संपूर्ण जीवन गाथा न जान सका। इसलिए यही श्रेयस्कर है कि हम अनन्य भाव से आपके श्रीचरणों की शरण में आ जाएँ और अपने पापों से मुक्त होने के लिए आपका ही नामस्मरण करते रहें। आप अपने निष्काम भक्तों की समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर उन्हें परमानंद की प्राप्ति करा दिया करते हैं। केवल आपके मधुर नाम का उच्चारण ही भक्तों के लिए अत्यन्त सुगम पथ है। इस साधन से उनमें राजसिक और तामसिक गुणों का ऱ्हास होकर सात्विक और धार्मिक गुणों का विकास होगा। इसके साथ ही साथ उन्हें क्रमशः विवेक, वैराग्य और ज्ञान की भी प्राप्ति हो जाएगी। तब उन्हें आत्मस्थित होकर गुरु से भी अभिन्नता प्राप्त होगी और इसका ही दूसरा अर्थ है गुरु के प्रति अनन्य भाव से शरणागत होना। इसका निश्चित प्रमाण केवल यही है कि तब हमारा मन स्थिर और शांत हो जाता है। इस शरणागति, भक्ति और ज्ञान की महत्ता अद्वितीय है, क्योंकि इनके साथ ही शांति, वैराग्य, कीर्त्ति, मोक्ष इत्यादि की भी प्राप्ति सहज ही हो जाती है।

यदि बाबा अपने भक्तों पर अनुग्रह करते हैं तो वे सदैव ही उनके समीप रहते हैं, चाहे भक्त कहीं भी क्यों न चला जाए, परन्तु वे तो किसी न किसी रुप में पहले ही वहाँ पहुँच जाते है। यह निम्नलिखित कथा से स्पष्ट है।

गया यात्रा

बाबा से परिचय होने के कुछ काल पश्चात् ही काकासाहेब दीक्षित ने अपने ज्येष्ठ पुत्र बापू का नागपुर में उपनयन संस्कार करने का निश्चय किया और लगभग उसी समय नानासाहेब चाँदोरकर ने भी अपने ज्येष्ठ पुत्र की ग्वालियर में शादी करने का कार्यक्रम बनाया। दीक्षित और चांदोरकर दोनों ही शिरड़ी आए और प्रेमपूर्वक उन्होंने बाबा को निमंत्रण दिया। तब उन्होंने अपने प्रतिनिधि शामा को ले जाने को कहा, परन्तु जब उन्होंने स्वयं पधारने के लिए उनसे आग्रह किया तो उन्होंने उत्तर दिया कि '' बनारस और प्रयाग निकल जाने के पश्चात्, मैं शामा से पहले ही पहुँच जाऊँगा ।'' पाठकगण! कृपया इन शब्दों को थोड़ा ध्यान में रखें, क्योंकि ये शब्द बाबा की सर्वज्ञता के बोधक हैं।

बाबा की आज्ञा प्राप्त कर शामा ने इन उत्सवों में सम्मिलित होने के लिए प्रथम नागपुर, ग्वालियर और इसके पश्चात् काशी, प्रयाग और गया जाने का निश्चय किया। अप्पा कोते भी शामा के साथ जाने को तैयार हो गए।

प्रथम तो वे दोनों उपनयन संस्कार में सम्मिलित होने नागपुर पहुँचे। वहाँ काकासोब दीक्षित ने शामा को दो सौ रुपये खर्च के निमित्त दिये। वहाँ से वे लोग विवाह में सम्मिलित होने ग्वालियर गये। वहाँ नानासाहेब चांदोरकर ने सौ रुपये और उनके संबंधी श्री. जठार ने भी सौ रुपये शामा को भेंट किये। फिर शामा काशी पहुँचे, जहाँ जठार ने लक्ष्मी-नारायण जी के भव्य मंदिर में उनका उत्तम स्वागत किया। अयोध्या में जठार के व्यवस्थापक ने भी शामा का अच्छा स्वागत किया। शामा और कोते अयोध्या में २१ दिन तथा काशी (बनारस) में दो मास ठहर कर फिर गया को रवाना हो गए। गया में प्लेग फैलने का समाचार रेलगाड़ी में सुनकर इन लोगों को थोड़ी चिन्ता सी होने लगी। फिर भी रात्रि को वे गया स्टेशन पर उतरे और एक धर्मशाला में जाकर ठहरे। प्रातःकाल गयावाला पुजारी (पंडा), जो यात्रियों के ठहरने और भोजन की व्यवस्था किया करता था, आया और कहने लगा कि सब यात्री तो प्रस्थान कर चुके हैं, इसलिए अब आप भी शीघ्रता करें। शामा ने सहज ही उससे पूछा कि क्या गया में प्लेग फैला है? तब पुजारी ने कहा कि '' नहीं। आप निर्विघ्न मेरे यहाँ पधारकर वस्तुस्थिति का स्वयं अवलोकन कर लें।'' तब वे उसके साथ उसके मकान पर पहुँचे। उसका मकान क्या; एक विशाल महल था, जिसमें पर्याप्त यात्री विश्राम पा सकते थे। शामा को भी उसी स्थान पर ठहराया गया, जो उन्हें अत्यन्त प्रिय लगा। बाबा का एक बड़ा चित्र, जो कि मकान के अग्निम भाग के ठीक मध्य में लगा था, देखकर वे अति प्रसन्न हो गये। उनका हृदय भर आया और उन्हें बाबा के शब्दों की स्मृति हो आई कि ''मैं काशी और प्रयाग निकल जाने के पश्चात् शामा से आगे ही पहुँच जाऊँगा।'' शामा की आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी और उनके शरीर में रोमांच हो आया तथा कंठ रुँध गया और रोते-रोते उनकी घिग्घियाँ बँध गईं। पुजारी ने शामा की जो ऐसी स्थिति देखी तो उसने सोचा कि यह व्यक्ति प्लेग की सूचना पर भयभीत होकर रुदन कर रहा है, परन्तु शामा ने उसकी कल्पना के विपरीत ही प्रश्न किया की यह बाबा का चित्र तुम्हें कहाँ से मिला? उसने उत्तर दिया कि मेरे दो-तीन सौ दलाल मनमाड़ और पुणताम्बे क्षेत्र में कार्य करते हैं तथा उस क्षेत्र से गया आने वाले यात्रियों की सुविधा का विशेष ध्यान रखा करते हैं। वहाँ शिरड़ी के साई महाराज की कीर्त्ति मुझे सुनाई पड़ी। लगभग बारह वर्ष हुए, मैंने स्वयं शिरड़ी जाकर बाबा के श्रीदर्शन का लाभ उठाया था और वहीं शामा के घर में लगे हुए उनके चित्र से मैं आकर्षित हुआ था। तभी बाबा की आज्ञा से शामा ने जो चित्र मुझे भेंट किया था, यह वही चित्र है। शामा की पूर्व स्मृति जागृत हो आई और जब गया वाले पुजारी को यह ज्ञात हुआ कि ये वही शामा हैं, जिन्होंने मुझे इस चित्र द्वारा अनुगृहीत किया था और आज मेरे यहाँ अतिथि बनकर ठहरे हैं तो उसके आनंद की सीमा न रही। दोनों बड़े प्रेमपूर्वक मिलकर हर्षित हुए। फिर पुजारी ने शामा का बादशाही ढंग से भव्य स्वागत किया। वह एक धनाढ्य व्यक्ति था। स्वयं डोली में और शामा को हाथी पर बिठाकर खूब घुमाया तथा हर प्रकार से उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखा। इस कथा ने सिद्ध कर दिया कि बाबा के वचन सत्य निकले। उनका अपने भक्तों पर कितना स्नेह था, इसको तो छोड़ो। वे तो सब प्राणियों पर एक-सा प्रेम किया करते थे और उन्हें अपना ही स्वरुप समझते थे। यह निम्नलिखित कथा से भी विदित हो जाएगा।

दो बकरे

एक बार जब बाबा लेंडी बाग से लौट रहे थे तो उन्होंने बकरों का एक झुंड आते देखा। उनमें से दो बकरों ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया। बाबा ने जाकर प्रेम-से उनका शरीर अपने हाथ से थपथपाया और उन्हें ३२ रुपये में खरीद लिया। बाबा का यह विचित्र व्यवहार देखकर भक्तों को आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा कि बाबा तो इस सौदे में ठगा गए हैं, क्योंकि एक बकरे का मूल्य उस समय तीन-चार रुपये से अधिक न था और वे दो बकरे अधिक से अधिक आठ रुपये में प्राप्त हो सकते थे।

उन्होंने बाबा को कोसना प्रारंभ किया, परंतु बाबा शान्त बैठे रहे। जब शामा और तात्या ने बकरे मोल लेने का कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि '' मेरे कोई घर या स्त्री तो है नहीं, जिसके लिए मुझे पैसे इकट्ठे करके रखना है।'' फिर उन्होंने चार सेर दाल बाजार से मँगाकर उन्हें खिलाई। जब उन्हें खिला-पिला चुके तो उन्होंने पुनः उनके मालिक को बकरे लौटा दिए। तत्पश्चात् ही उन्होंने उन बकरों के पूर्वजन्मों की कथा इस प्रकार सुनाई- '' शामा और तात्या, तुम सोचते हो कि मैं इस सौदे में ठगा गया हूँ? परन्तु ऐसा नहीं, इनकी कथा सुनो। गत जन्म में ये दोनों मनुष्य थे और सौभाग्य से मेरे निकट संपर्क में थे। मेरे पास बैठते थे। ये दोनों सगे भाई थे और पहले इनमें परस्पर बहुत प्रेम था, परन्तु बाद में ये एक दूसरे के कट्टर शत्रु बन गए। बड़ा भाई आलसी था, किन्तु छोटा भाई बहुत परिश्रमी था, जिसने पर्याप्त धन उपार्जन कर लिया था, जिससे बड़ा भाई अपने छोटे भाई से ईर्ष्या किया करता था। इसलिए उसने छोटे भाई की हत्या करके उसका धन हड़पने की ठानी और अपना आत्मीय सम्बन्ध भूलकर वे एक दूसरे से बुरी तरह झगड़ने लगे। बड़े भाई ने अनेक प्रयत्न किए, परन्तु वह छोटे भाई की हत्या में असफल रहा। तब वे एक दूसरे के प्राणघातक शत्रु बन गए। एक दिन बड़े भाई ने छोटे भाई के सिर पर लाठी से

प्रहार किया। तब बदले में छोटे भाई ने भी बड़े भाई के सिर पर कुल्हाड़ी चलाई और परिणामस्वरुप वहीं दोनों की मृत्यु हो गई। फिर अपने कर्मों के अनुसार ये दोनों बकरे की योनि को प्राप्त हुए। जैसे ही वे मेरे समीप से निकले तो मुझे उनके पूर्व इतिहास का स्मरण हो आया और मुझे दया आ गई। इसलिए मैंने उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने तथा सुख देने का विचार किया। यही कारण है कि मैं ने उनके लिए पैसे खर्च किए, जो तुम्हें महँगे प्रतीत हुए हैं। तुम लोगों को यह लेन-देन अच्छा नहीं लगा, इसलिए मैंने इनके बकरों को गड़ेरिऐ को वापस कर दिया है। सचमुच बकरे जैसे सामान्य प्राणियों के लिये भी बाबा को बेहद प्रेम था।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ४७।।

पुनर्जन्म

वीरभद्रप्पा और चेनबसाप्पा (सर्प व मेंढक) की वार्त्ता।

गत अध्याय में बाबा द्वारा बताई गई दो बकरों के पूर्व जन्मों की वार्त्ता थी। इस अध्याय में कुछ और भी पूर्व जन्मों की स्मृतियों का वर्णन किया जाता है। प्रस्तुत कथा वीरभद्रप्पा और चेनबसाप्पा के सम्बन्ध में है।

प्रस्तावना

हे त्रिगुणातीत ज्ञानावतार श्रीसाई! तुम्हारी मूर्त्ति कितनी भव्य और सुन्दर है। हे अन्तर्यामिन्! तुम्हारे श्रीमुख की आभा धन्य है। उसका क्षणमात्र भी अवलोकन करने से पूर्व जन्मों के समस्त दुःखों का नाश होकर सुख का द्वार खुल जाता है। परन्तु हे मेरे प्यारे श्री साई! यदि तुम अपने स्वभाववश ही कुछ कृपाकटाक्ष करो, तभी इसकी कुछ आशा हो सकती है। तुम्हारी दृष्टिमात्र से ही हमारे कर्म-बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और हमें आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। गंगा में स्नान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, परन्तु गंगामाई भी संतों के आगमन की सदैव उत्सुकतापूर्वक राह देखा करती हैं कि वे कब पधारें और मुझे अपनी चरण-रज से पावन करें। श्री साई तो संत - चूड़ामणि हैं। अब उनके द्वारा ही हृदय पवित्र बनाने वाली यह कथा सुनो।

सर्प और मेंढक

श्री साई बाबा ने कहा -'' एक दिन प्रातःकाल ८ बजे जलपान के पश्चात् मैं घूमने निकला। चलते-चलते मैं एक छोटीसी नदी के किनारे पहुँचा। मैं अधिक थक चुका था, इस कारण वहाँ बैठकर कुछ विश्राम करने लगा। कुछ देर के पश्चात् ही मैंने हाथ-पैर धोए और स्नान किया। तब कहीं मेरी थकावट दूर हुई और मुझे कुछ प्रसन्नता का अनुभव होने लगा। उस स्थान से एक पगडंडी और बैलगाड़ी के जाने का मार्ग था, जिसके दोनों ओर सघन वृक्ष थे। मलय-पवन मंद-मंद बह रहा था। मैं चिलम भर ही रहा था कि इतने में ही मेरे कानों में एक मेंढक के बुरी तरह टर्राने की ध्वनि पड़ी। मैं चकमक सुलगा ही रहा था कि इतने में एक यात्री वहाँ आया और मेरे समीप ही बैठकर उसने मुझे प्रणाम किया और घर पर पधारकर भोजन तथा विश्राम करने का आग्रह करने लगा। उसने चिलम सुलगा कर मेरी ओर पीने के लिए बढ़ाई। मेंढक के टर्राने की ध्वनि सुनकर वह उसका रहस्य जानने के लिए उत्सुक हो उठा । मैंने उसे बतलाया कि एक मेंढक कष्ट में है, जो अपने पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोग रहा है। **पूर्व जन्म के कर्मो का फल इस जन्म में भोगना पड़ता है, अतः अब उसका चिल्लाना व्यर्थ है।** एक कश लेकर उसने चिलम मेरी ओर बढ़ाई। '' थोड़ा देखूँ तो, आखिर बात क्या है?'' ऐसा कहकर वह उधर जाने लगा । मैंने उसे बतलाया कि एक बड़े साँप ने एक मेंढक को मुँह में दबा लिया है, इस कारण वह चिल्ला रहा है। दोनों ही पूर्व जन्म में बड़े दुष्ट थे और अब इस शरीर में अपने कर्मो का फल भोग रहे हैं। आगन्तुक ने घटना-स्थल पर जाकर देखा कि सचमुच एक बड़े सर्प ने एक बड़े मेंढक को मुँह में दबा रखा है।

उसने वापस आकर मुझे बताया कि लगभग घड़ी-दो में ही साँप मेंढक को निगल जाएगा। मैंने कहा - '' नहीं, यह कभी नहीं हो सकता; मैं उसका संरक्षक पिता हूँ और इस समय यहाँ उपस्थित हूँ फिर सर्प की क्या सामर्थ्य है कि मेंढक को निगल जाए ? क्या मैं व्यर्थ ही यहाँ बैठा हूँ? देखो, मैं अभी उसकी किस प्रकार रक्षा करता हूँ।'' दुबारा चिलम पीने के पश्चात् हम लोग उस स्थान पर गए। आगन्तुक डरने लगा और उसने मुझे आगे बढ़ने से रोका कि कहीं सर्प आक्रमण न कर दे। मैं उसकी बात की उपेक्षा कर आगे बढ़ा और दोनों से कहने लगा कि '' अरे वीरभद्रप्पा ! क्या तुम्हारे शत्रु को पर्याप्त फल नहीं मिल चुका है, जो उसे मेंढक की और तुम्हें यह संर्प की योनि प्राप्त हुई है? अरे ! अब तो अपना वैमनस्य छोड़ो। यह बड़ी लज्जाजनक बात है। अब तो इस ईर्ष्या को त्यागो और शांति से रहो ।'' इन शब्दों को सुनकर सर्प ने मेंढक को छोड़ दिया और शीघ्र ही नदी में लुप्त हो गया। मेंढक भी कूदकर भागा और झाड़ियों में जा छिपा।

उस यात्रीं को बड़ा अचम्भा हुआ। उसकी समझ में न आया कि बाबा के शब्दों को सुनकर साँप ने मेंढक को क्यों छोड़ दिया और वीरभद्रप्पा व चेनबसाप्पा कौन थे? उनके वैमनस्य का कारण क्या था? इस प्रकार के विचार उसके मन में उठनें लगे। मैं उसके साथ उसी वृक्ष के नीचे लौट आया धूम्रपान करने के पश्चात् उसे इसका रहस्य सुनाने लगाः-

''मेरे निवासस्थान से लगभग ४-५ मील की दूरी पर एक पवित्र स्थान था, जहाँ महादेव का एक मंदिर था। मंदिर अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण स्थिति में था, सो वहाँ के निवासियों ने उसका जीर्णोद्धार करने के हेतु कुछ चन्दा इकट्ठा किया । पर्याप्त धन एकत्रित हो गया और वहाँ नित्य पूजन की व्यवस्था कर मंदिर के निर्माण की योजनाएँ तैयार की गईं । एक धनाढ्य व्यक्ति को कोषाध्यक्ष नियुक्त कर उसको समस्त कार्य की देख-भाल का भार सौंप दिया गया। उसको कार्य, व्यय आदि का यथोचित विवरण रखकर ईमानदारी से सब कार्य करना था। सेठ तो एक उच्च कोटि का कंजूस था। उसने मरम्मत में अत्यन्त अल्पराशि व्यय की, इस कारण मंदिर का जीर्णोद्धार भी उसी अनुपात में हुआ। उसने सब राशि व्यय कर दी तथा कुछ अंश स्वयं हड़प लिया और उसने अपनी गाँठ से एक पाई भी व्यय न की। उसकी वाणी अधिक रसीली थी, इसलिये उसने लोगों को किसी प्रकार समझा-बुझा लिया और कार्य पूर्वत् ही अधूरा रह गया। लोग फिर संगठित होकर उसके पास जाकर कहने लगे-सेठसाहेब! कृपया कार्य शीघ्र पूर्ण कीजिए। आपके प्रयत्न के अभाव में यह कार्य पूर्ण होना कदापि संभव नहीं। अतः आप पुनः योजना बनाइए। हम और भी चन्दा आपको वसूल करके देंगे। लोगों ने पुनः चन्दा एकत्रित कर सेठ को दे दिया। उसने रुपये तो ले लिए, परन्तु पूर्ववत् ही शांत बैठा रहा। कुछ दिनों के पश्चात् उसकी स्त्री को भगवान् शंकर ने स्वप्न दिया कि उठो और मंदिर पर कलश चढ़ाओ। जो कुछ भी तुम इस कार्य में व्यय करोगी, मैं उसका सौ गुना अधिक तुम्हें दूँगा। उसने यह स्वप्न अपने पति को सुना दिया। सेठ भयभीत होकर सोचने लगा कि यह कार्य तो ज्यादा रुपये खर्च कराने वाला है, इसलिये उसने यह बात हँसकर टाल दी कि यह तो एक निरा स्वप्न ही है और उस पर भी कहीं विश्वास किया जा सकता है? यदि ऐसा होता तो महादेव मेरे समक्ष ही प्रगट होकर यह बात मुझसे न कह देते? मैं क्या तुमसे अधिक दूर था? यह स्वप्न शुभदायक नहीं। यह तो पति-पत्नी के सम्बन्ध बिगाड़ने वाला है। इसलिये तुम बिलकुल शांत रहो। भगवान को ऐसे द्रव्य की आवश्यकता ही कहाँ, जो दानियों की इच्छा के विरुद्ध एकत्र किया गया हो। वे तो सदैव प्रेम के भूखे हैं तथा प्रेम और भक्तिपूर्वक दिए गए एक तुच्छ ताँबे का सिक्का भी सहर्ष स्वीकार कर लते हैं। महादेव ने पुनः सेठानी को स्वप्न में कह दिया कि तुम अपने पति की व्यर्थ की बातों और उनके पास संचित धन की ओर ध्यान न दो और न उनसे मंदिर बनवाने के लिए आग्रह ही करों । मैं तो तुम्हारे प्रेम और भक्ति का ही भूखा हूँ। जो कुछ भी तुम्हारी व्यय करने की इच्छा हो, सो अपने पास से करो। उसने अपने पतिसे विचार-विनिमय करके अपने पिता से प्राप्त आभूषणों को विक्रय करने का निश्चय किया। तब कृपण सेठ अशान्त हो उठा। इस बार उसने भगवान् को भी धोखा देने की ठान ली। उसने कौड़ी-मोल केवल एक हजार रुपयों में ही अपनी पत्नी के समस्त आभूषण स्वयं खरीद डाले और एक बंजर भूमि का भाग मंदिर के निमित्त लगा दिया, जिसे उसकी पत्नी ने भी चुपचाप स्वीकार कर लिया । सेठ ने जो भूमि दी, वह उसकी स्वयं की न थी, वरन् एक निर्धन स्त्री ' दूबकी ' की थी, जो इसके यहाँ दो सौ रुपयो में गहन रखी हुई थी। दीर्घकाल तक वह ऋण चुकाकर उसे वापस न ले सकी, इसलिए उस धूर्त्त कृपण ने अपनी स्त्री, 'दुबकी' और भगवान् को धोखा दे दिया । भूमि पथरीली होने के कारण उसमें उत्तम ऋतु में भी कोई पैदावार न होती थी। इस प्रकार यह लेन-देन समाप्त हुआ। भूमि उस मंदिर के पुजारी को दे दी गई, जो उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।

कुछ समय के पश्चात् एक विचित्र घटना घटित हुई। एक दिन बहुत जोरों से झंझावात आया और अति वृष्टि हुई। उस कृपण के घर पर बिजली गिरी और फलस्वरुप पति-पत्नी दोनों की मृत्यु हो गई। दुबकी ने भी अंतिम श्वास छोड़ दी। अगले जन्म में वह कृपण मथुरा के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ और उसका नाम 'वीरभद्रप्पा ' रखा गया। उसकी धर्मपत्नी उस मंदिर के पुजारी के घर कन्या होकर उत्पन्न हुई और उसका नाम 'गौरी ' रखा गया। 'दुबकी' पुरुष बनकर मंदिर के गुरव (सेवक) वंश में पैदा हुई और उसका नाम चेनबसाप्पा रखा गया। पुजारी मेरा मित्र था और अधिकांश मेरे पास आता जाता, वार्त्तालाप करता और मेरे साथ चिलम पिया करता था। उसकी पुत्री गौरी भी मेरी भक्त थी। वह दिनोंदिन सयानी होती जा रही थी, जिससे उसका पिता भी उसके हाथ पीले करने की चिंता में रहता था। मैंने उससे कहा कि चिंता की कोई आवश्यकता नहीं, वर स्वयं तुम्हारे घर लड़की की खोज में आ जाएगा। कुछ दिनों के पश्चात् ही उसी की जाति का वीरभद्रप्पा नामक एक युवक

भिक्षा माँगते-माँगते उसके घर पहुँचा। मेरी सम्मति से गौरी का विवाह उसके साथ सम्पन्न हो गया। पहले तो वह मेरा भक्त था, किन्तु अब वह कृतघ्न बन गया। इस नूतन जन्म में भी उसकी धन-तृष्णा नष्ट न हुई। उसने मुझसे कोई उद्योग धंधा सुझाने को कहा, क्योंकि इस समय वह विवाहित जीवन व्यतीत कर रहा था। तभी एक विचित्र घटना हुई। अचानक ही प्रत्येक वस्तुओं के भाव ऊँचे चढ़ गए । गौरी के भाग्य से जमीन की माँग अधिक होने लगी और समस्त भूमि एक लाख रुपयों में, आभूषणों के मूल्य से १०० गुना अधिक मूल्य में बिक गई । ऐसा निर्णय हुआ कि ५० हजार रुपये नगद और २००० रुपये प्रतिवर्ष किश्त पर चुकता कर दिए जाएँगे। सबको यह लेनदेने स्वीकार था, परन्तु धन में हिस्से के कारण उनमें परस्पर विवाद होने लगा। वे परामर्श लेने मेरे पास आये और मैने कहा कि यह भूमि तो भगवान् की है, जो पुजारी को सौंपी गई थी। इसकी स्वामिनी 'गौरी' ही है और एक पैसा भी उसकी इच्छा के विरुद्ध खर्च करना उचित नहीं तथा उसके पति का इस पर कोई अधिकारी नहीं है। मेरे निर्णय को सुनकर वीरभद्रप्पा मुझसे क्रोधित होकर कहने लगा कि तुम गौरी को फुसलाकर उसका धन हड़पना चाहते हो। इन शब्दों को सुनकर मैं भगवत् नाम लेकर चुप गया। वीरभद्र ने अपनी स्त्री को पीटा भी। गौरी ने दोपहर के समय आकर मुझसे कहा कि आप उन लोगों के कहने का बुरा न मानें । मैं तो आपकी लड़की हूँ। मुझ पर कृपादृष्टि ही रखें । वह इस प्रकार मेरी शरण में आई तो मैंने उसे वचन दे दिया कि **मैं सात समुद्र पार कर भी तुम्हारी रक्षा करुँगा।** तब उस रात्रि को गौरी को एक दृष्टांत हुआ। महादेव ने आकर कहा कि यह सब सम्पत्ति तुम्हारी ही है और इसमें से किसी को कुछ न दो। चेनबसाप्पा की सलाह से कुछ राशि मंदिर के कार्य के लिये खर्च करो। यदि और किसी भी कार्य में तुम्हें खर्च करने की इच्छा हो तो मस्जिद में जाकर बाबा (स्वयं मैं) के परामर्श से करो। गौरी ने उपना दृष्टांत मुझे सुनाया और मैंने इस विषय में उचित सलाह भी दी। मैंने उससे कहा कि मूलधन तो तुम स्वयं ले लो और व्याज की आधी रकम चेनबसाप्पाको दे दो। वीरभद्र का इसमें कोई संबन्ध नहीं है। जब मैं यह बात कर ही रहा था, वीरभद और चेनबसाप्पा दोनों ही वहाँ झगड़ते हुए आए। मैंने दोनों को शांत करने का प्रयत्न किया तथा गौरी को हुआ महादेव का स्वप्न भी सुनाया। वीरभद्र क्रोध से उन्मत्त हो गया और चेनबसाप्पा को टुकड़े-टुकड़े कर मार डालने की धमकी देने लगा। चेनबसाप्पा बड़ा डरपोक था। वह मेरे पैर पकड़कर रक्षा की प्रार्थना करने लगा। तब मैंने शत्रु के पाश से उसका छुटकार करा दिया। कुछ समय पश्चात् ही दोनों की मृत्यु हो गई । वीरभद्र सर्प बना और चेनबसाप्पा मेंढक। चेनबसाप्पा की पुकार सुनकर और अपने पूर्व वचन की स्मृति करके यहाँ आया और इस तरह से उसकी रक्षा कर मैंने अपने वचन पूर्ण किये। **संकट के समय भगवान् दौड़कर अपने भक्त के पास जाते हैं। उसने मुझे यहाँ भेजकर चेनबसाप्पा की रक्षा कराई । यह सब ईश्वरीय लीला ही है।''**

शिक्षा

इस कथा की यही शिक्षा है कि **जो जैसा बोता है, वैसा ही काटता है, जब तक कि भोग पूर्ण नहीं होते।** पिछला ऋण और अन्य लोगों के साथ लेने-देने का व्यवहार जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक छुटकार भी संभव नहीं है। धनतृष्णा मनुष्य का पतन कर देती है और अन्त में इससे ही वह विनाश को प्राप्त होता है।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ४८ ।।

सद्‌गुरु के लक्षण

(१) श्री शेवड़े और (२) श्री सपटणेकर व श्रीमती सपटणेकर (३) संतति दान।

अध्याय प्रारम्भ करने से पूर्व किसी ने हेमाड़पंत से प्रश्न किया कि साईबाबा गुरु थे या सद्‌गुरु? इसके उत्तर में हेमाड़पंत सद्‌गुरु के लक्षणों का निम्नप्रकार वर्णन करते हैं।

सद्‌गुरु के लक्षण

जो वेद और वेदान्त तथा छहों शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करके ब्रह्मविषयक मधुर व्याख्यान देने में पारंगत हो तथा जो अपने श्वासोच्छ्वास क्रियाओं पर नियंत्रण कर सहज ही मुद्राएँ लगाकर अपने शिष्यों को मंत्रोपदेश दे निश्चित अवधि में यथोचित संख्या का जप करने का आदेश दे और केवल अपने वाक्‌चातुर्य से ही उन्हें जीवन के अंतिम ध्येय का दर्शन कराता हो तथा जिसे स्वयं आत्मसाक्षात्कार न हुआ हो, वह सद्‌गुरु नहीं । वरन् जो अपने आचरणों से लौकिक व पारलौकिक सुखों से विरक्ति की भावना का निर्माण कर हमें आत्मानुभूति का रसास्वादन करा दे तथा जो अपने शिष्यों को क्रियात्मक और प्रत्यक्ष ज्ञान (आत्मानुभूति) करा दे, उसे ही सद्‌गुरु कहते हैं। जो स्वयं ही आत्मसाक्षात्कार से वंचित हैं, वे भला अपने अनुयायियों को किस प्रकार अनुभूति करा सकते हैं? सद्‌गुरु स्वप्न में भी अपने शिष्य से कोई लाभ या सेवा - शुश्रूषा की लालसा नहीं करते, वरन् स्वयं उनकी सेवा करने को ही उद्यत रहते हैं। उन्हें यह कभी भी भान नहीं होता है कि मैं कोई महान् हूँ और मेरा शिष्य मुझसे तुच्छ है, अपितु उसे अपने ही सदृश (या ब्रह्मस्वरुप) समझा करते हैं। सद्‌गुरु की मुख्य विशेषता यही है कि उनके हृदय में सदैव परम शांति विद्यमान रहती है। वे कभी अस्थिर या अशांत नहीं होते और न उन्हें अपने ज्ञान का ही लेशमात्र गर्व होता है। उनके लिए राजा-रंक, स्वर्ग -अपवर्ग सब एक ही समान हैं।

हेमाड़पंत कहते हैं कि मुझे गत जन्मों के शुभ संस्कारों के परिणामस्वरुप श्री साईबाबा सदृश सद्‌गुरु के चरणों की प्राप्ति तथा उनके कृपापात्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे अपने यौवन काल में चिलम के अतिरिक्त कुछ संग्रह न किया करते थे। न उनके बाल-बच्चे तथा मित्र थे, न घरबार था और न उन्हें किसी प्रकार का आश्रय प्राप्त था। १८ वर्ष की अवस्था से ही उनका मनोनिग्रह बड़ा विलक्षण था। वे निर्भय होकर निर्जन स्थानों में विचरण करते एवं सदा आत्मलीन रहते थे। वे सदैव भक्तों की निःस्वार्थ भक्ति देखकर ही उनकी इच्छानुसार आचरण किया करते थे। उनका कथन था कि **मैं सदा भक्त के पराधीन रहता हूँ।** ' जब वे शरीर में थे, उस समय भक्तों ने जो अनुभव किए, उनके समाधिस्थ होने के पश्चात् आज भी जो उनके शरणागत हो चुके हैं, उन्हें उसी प्रकार के अनुभव होते रहते हैं । भक्तों को तो केवल इतना ही यथेष्ठ है कि यदि वे अपने हृदय को भक्त और विश्वास का दीपक बनाकर उसमें प्रेम की ज्योजि प्रज्वलित करें तो ज्ञानज्योति (आत्मसाक्षात्कार) स्वयं प्रकाशित हो उठेगी। **प्रेम के अभाव में शुष्क ज्ञान व्यर्थ है। ऐसा ज्ञान किसी को भी लाभप्रद नहीं हो सकता,** प्रेमभाव में संतोष नहीं होता। इसलिए हमारा प्रेम असीम और अटूट होना चाहिए । प्रेम की कीर्त्ति का गुणगान कौन कर सकता है, जिसकी तुलना में समस्त वस्तुएँ तुच्छ जान पड़ती हैं? प्रेमरहित पठनपाठन सब निष्फल है। प्रेमांकुर के उदय होते ही भक्ति, वैराग्य, शांति और कल्याणरुपी सम्पत्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है। जब तक किसी वस्तु के लिए प्रेम उत्पन्न नहीं होता, तब तक उसे प्राप्त करने की भावना ही उत्पन्न नहीं होती। इसलिए **जहाँ व्याकुलता और प्रेम है, वहाँ भगवान् स्वयं प्रगट हो जाते हैं। भाव में ही प्रेम अंतर्निहित है और वही माक्ष का कारणीभूत है।** यदि कोई व्यक्ति कलुषित भाव से भी किसी सच्चे संत के चरण पकड़ ले तो यह निश्चित है कि वह अवश्य तर जाएगा । ऐसी ही कथा नीचे दर्शाई गई है।

श्री. शेवड़े

अक्कलकोट (सोलापुर जिला) के श्री. सपटणेकर वकालत का अध्ययन कर रहे थे। एक दिन उनकी अपने सहपाठी श्री. शेवड़े से भेंट हुई। अन्य और भी विद्यार्थी वहाँ एकत्रित हुए और सब ने अपनी-अपनी अध्ययन संबंधी योग्यता का परस्पर परीक्षण किया । प्रश्नोत्तरों से विदित हो गया कि सब से कम अध्ययन श्री. शेवड़े का है और वे परीक्षा में बैठने के अयोग्य हैं। जब सब मित्रों ने मिलकर उनका उपहास किया, तब शेवड़े ने कहा कि ''यद्यपि मेरा अध्ययन अपूर्ण है तो भी मैं परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। मेरे साईबाबा ही सबको सफलता देने वाले हैं।'' श्री. सपटणेकर को यह सुनकर आश्चर्य हुआ और उन्होंने श्री. शेवड़े से पूछा कि ये साईबाबा कौन है, जिनका तुम इतना गुणगान कर रहे हो? उन्होंने उत्तर दिया कि वे एक फकीर हैं, जो शिरड़ी (अहमदनगर) की एक मस्जिद में निवास करते हैं। वे महान् सत्पुरुष हैं। ऐसे अन्य संत भी हो सकते हैं, परन्तु वे उनसे अद्वितीय हैं। **जब तक पूर्व जन्म के शुभ संस्कार संचित न हों, तब तक उनसे भेंट होना दुर्लभ है।** मेरी तो उन पर पूर्ण श्रद्धा है। उनके श्रीमुख से निकले वचन कभी असत्य नहीं होते। उन्होंने ही मुझे विश्वास दिलाया है कि मैं अगले वर्ष परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। मेरा भी अटल विश्वास है कि मैं उनकी कृपा से परीक्षा में अवश्य ही सफलता पाऊँगा। श्री. सपटणेकर को अपने मित्र के ऐसे विश्वास पर हँसी आ गई और साथ ही साथ श्री साईबाबा का भी उन्होंने उपहास किया । भविष्य में जब शेवड़े दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गये, तब सपटणेकर को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्री. सपटणेकर

श्री. सपटणेकर परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् अक्कलकोट में रहने लगे और वहीं उन्होंने अपनी वकालत प्रारम्भ कर दी। दस वर्षो के पश्चात् सन् १९१३ में उनके इकलौते पुत्र की गले की बीमारी से मृत्यु हो गई, जिससे उनका हृदय विचलित हो उठा । मानसिक शांति प्राप्त करने हेतु उन्होंने पंढरपुर, गाणगापुर और अन्य तीर्थस्थानों की यात्रा की. परन्तु उनकी अशांति पूर्ववत् ही बनी रही। उन्होंने वेदांत का भी श्रवण किया, परन्तु वह भी व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। अचानक उन्हें शेवड़े के वचनों तथा श्री साईबाबा के प्रति उनके विश्वास की स्मृति हो आई और उन्होंने विचार किया कि मुझे भी शिरड़ी जाकर बाबा के दर्शन करना चाहिए। वे अपने छोटे भाई पंडितराव के साथ शिरड़ी आए। बाबा के दर्शन कर उन्हें बड़ी प्रन्नता हुई। जब उन्होंने समीप जाकर नमस्कार करके शुद्ध भावना से श्रीफल भेंट किया तो बाबा तुरन्त क्रोधित हो उठे और बोले कि '' यहाँ से निकल जाओ।'' सपटणेकर का सिर झुक गया और वे कुछ हटकर पीछे बैठे गए। वे यह जानना चाहते थे कि किस प्रकार उनके समक्ष उपस्थित होना चाहिए। किसी ने उन्हें बाला शिम्पी का नाम सुझा दिया। सपटणेकर उनके पास गए और उनसे सहायता करने की प्रार्थना करने लगे। तब वे दोनों बाबा का एक चित्र मोल लेकर मस्जिद को आये । बाला शिम्पी ने अपने हाथ में चित्र लेकर बाबा के हाथ में दे दिया और पूछा कि यह किसका चित्र है? बाबा ने सपटणेकर की ओर संकेत कर कहा कि '' यह तो मेरे यार का है।'' यह कहकर वे हँसने लगे और साथ ही सब भक्त मंडली भी हँसने लगी । बाला शिम्पी के इशारे पर जब सपटणेकर उन्हें प्रणाम करने लगे तो वे पुनः चिल्ला पड़े कि '' बाहर निकलो।'' सपटणेकर की समझ में नहीं आता था कि वे क्या करें । तब वे दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए बाबा के सामने बैठ गये, परन्तु बाबा ने उन्हें तुरन्त ही बाहर निकलने की आज्ञा दी। वे दोनों बहुत ही निराश हुए। उनकी आज्ञा कौन टाल सकता था? आखिर सपटणेकर खिन्न -हृदय शिरड़ी से वापस चले आये। उन्होंने मन ही मन प्रार्थना की कि '' हे साई ! मै आपसे दया की भिक्षा माँगता हूँ । कम से कम इतना ही आश्वासन दे दीजिए कि मुझे भविष्य में कभी न कभी आपके श्री दर्शनों की अनमति मिल जाएगी।''

श्रीमती सपटणेकर

एक वर्ष बीत गया, फिर भी उनके मन में शांति न आई । वे गाणगापुर गए, जहाँ उनके मन में और अधिक अशांति बढ़ गई। अतः वे माढेगाँव विश्राम के लिये पहुँचे और वहाँ से ही काशी जाने का निश्चय किया । प्रस्थान करने के दो दिन पूर्व उनकी पत्नी को स्वप्न हुआ कि वह स्वप्न में एक गागर ले लक्कड़शाह के कुएँ पर जल भरने जा रही है। वहाँ नीम के नीचे एक फकीर बैठा है। सिर पर एक कपड़ा बँधा हुआ है। फकीर उसके पास आकर कहने लगा कि '' मेरी प्रिय बच्ची ! तुम क्यों व्यर्थ कष्ट उठा रही हो ? मैं तुम्हारी गागर निर्मल जल से भर देता हूँ।'' तब फकीर के भय से वह खाली गागर लेकर ही लौट आई । फकीर भी उसके पीछे-पीछे चला आया। इतने में ही घबराहट में उसकी निद्रा भंग हो गई और उसने आँखें खोल दीं । यह स्वप्न उसने अपने पति को सुनाया। उन्होंने इसे एक शुभ शकुन जाना और वे दोनों शिरड़ी को रवाना हो गए। जब वे मस्जिद पहुँचे तो बाबा वहाँ उपस्थित न थे। वे लेण्डी बाग गए हुए थे। उनके लौटने की प्रतीक्षा में वे वहीं बैठे रहे। जब बाबा लौटे तो उन्हें देखकर उनकी पत्नी को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि स्वप्न में जिस फकीर के उसने दर्शन किए थे, उसकी

आकृति बाबा से बिलकुल मिलती-जुलती थी। उसने अति आदरसहित बाबा को प्रणाम किया और वहीं बैठे-बैठे उन्हें निहारने लगी। उसका विनम्र स्वभाव देखकर बाबा अत्यन्त प्रसन्न हो गए। अपनी पद्धति के अनुसार वे एक तीसरे व्यक्ति को अपने अनोखे ढंग से एक कहानीसुनाने लगे - '' मेरे हाथ, उदर, शरीर तथा कमर में बहुत दिनों से दर्द हुआ करता था। मैंने उनेक उपचार किए, परन्तु मुझे कोई लाभ न पहुँचा। मैं औषधियों से ऊब उठा , क्योंकि मुझे उनसे कोई लाभ न हो रहा था, परन्तु अब मुझे बड़ा अचम्भा हो रहा है कि मेरी समस्त पीड़ाएँ एकदम ही जाती रहीं। '' यद्यपि किसी का नाम नहीं लिया गया था, परन्तु यह चर्चा स्वयं श्रीमती सपटणेकर की थी। उनकी पीड़ा जैसा बाबा ने अभी कहा, सर्वथा मिट गई और वे अत्यन्त प्रसन्न हो गईं।

संतति –दान

तब श्री. सपटणेकर दर्शनों के लिए आगे बढ़े, परन्तु उनका पूर्वोक्त वचानों से ही स्वागत हुआ कि '' बाहर निकल जाओ ।'' इस बार वे बहुत धैर्य और नम्रता धारण करके आए थे। उन्होंने कहा कि पिछले कर्मो के कारण ही बाबा मुझसे अप्रसन्न हैं और उन्होंने अपना चरित्र सुधारने का निश्चय कर लिया और बाबा से एकान्त में भेंट करके अपने पिछले कर्मों की क्षमा माँगने का निश्चय किया। उन्होंने वैसा ही किया भी और अब जब उन्होंने अपना मस्तक उनके श्रीचरणों पर रखा तो बाबा ने उन्हें आशीर्वाद दिया । अब सपटणेकर उनके चरण दबाते हुए बैठे ही थे कि इतने में एक गड़ेरिन आई और बाबा की कमर दबाने लगी। तब वे सदैव की भाँति एक बनिए की कहानी सुनाने लगे। जब उन्होंने उसके जीवन के अनेकों परिवर्त्तन तथा उसके इकलौते पुत्र की मृत्यु का हाल सुनाया तो सपटणेकर को अत्यंत आश्चर्य हुआ कि जो कथा वे सुना रहे हैं, वह तो मेरी ही हैं। उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ कि उनको मेरे जीवन की प्रत्येक बात का पता कैसे चल गया? अब उन्हे विदित हो गया कि बाबा अन्तर्यामी हैं और सबके हृदय का पूरा-पूरा रहस्य जानते हैं। यह विचार उनके मन में आया ही था कि गड़ेरिन से वार्त्तालाप चालू रखते हुए बाबा सपटणेकर की ओर संकेत कर कहने लगे कि '' यह भला आदमी मुझ पर दोषारोपण करता है कि मैंने ही इसके पुत्र को मार डाला है। क्या मैं लोगों के बच्चों के प्राण -हरण करता हूँ? फिर ये महाशय मस्जिद में आकर अब क्यों चीख-पुकार मचाते हैं? अब मैं एक काम करुँगा। अब मैं उसी बालक को फिर से इनकी पत्नी के गर्भ में ला दूँगा ।'' - ऐसा कहकर बाबा ने अपना वरद हस्त सपटणेकर के सिर पर रखा और असे सान्त्वना देते हुए कहा कि **'' ये चरण अधिक पुरातन तथा पवित्र हैं। जब तुम चिंता से मुक्त होकर मुझ पर पूरा विश्वास करोगे, तभी तुम्हें अपने ध्येय की प्राप्ति हो जाएगी।''** सपटणेकर का हृदय गद्‌गद हो उठा। तब अश्रुधारा से उनके चरण धोकर वे अपने निवासस्थान पर लौट आए और फिर पूजन की तैयारी कर नैवद्य आदि लेकर वे सपत्नीक मस्जिद में आए। वे इसी प्रकार नित्य नैवेद्य चढाते और बाबा से प्रसाद ग्रहण करते रहे। मस्जिद में अपार भीड़ होते हुए भी वे वहाँ जाकर उन्हें बार-बार नमस्कार करते थे। एक दूसरे से सिर टकराते देखकर बाबा ने उनसे कहा कि **'' प्रेम तथा श्रद्धा व्दारा हुआ एक ही नमस्कार मुझे पर्याप्त है।''** उसी रात्रि को उन्हें चावड़ी का उत्सव देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ और उन्हें बाबा ने पांडुरंग के रुप में दर्शन दिए।

जब वे दूसरे दिन वहाँ से प्रस्थान करने लगे तो उन्होंने विचार किया कि पहले दक्षिणा में बाबा को एक रुपया दूँगा। यदि उन्होंने और माँगे तो अस्वीकार करने के बजाय एक रुपया और भेंट में चढ़ा दूँगा। फिर भी यात्रा के लिए शेष द्रव्यराशि पर्याप्त होती। जब उन्होंने मस्जिद जाकर बाबा को एक रुपया दक्षिणा दी तो बाबा ने भी उनकी इच्छा जानकर एक रुपया उनसे और माँगा। जब सपटणेकर ने उसे सहर्ष दे दिया तो बाबा ने भी उन्हें आशीर्वाद देकर कहा कि '' यह श्रीफल ले जाओ और इसे अपनी पत्नी की गोद में रखकर निश्चिंत होकर घर जाओ। '' उन्होंने वैसा ही किया और एक वर्ष के पश्चात् ही उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ । आठ मास का शिशु लेकर वह दम्पति फिर शिरड़ी को आए और बाबा के चरणों पर बालक को रखकर फिर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि '' हे श्रीसाईनाथ ! आपके ऋण हम किस प्रकार चुका सकेंगे ? आपके श्रीचरणों में हमारा बार-बार प्रणाम है। हम दीनों पर आप सदैव कृपा करते रहिएगा, क्योंकि हमारे मन में ही सोते /जागते हर समय न जाने क्या/क्या संकल्प /विकल्प उठा करते है। आपके भजन में ही हमार मन मग्न हो जाए, ऐसा आशीर्वाद दीजिए।''

उस पुत्र का नाम 'मुरलीधर' रखा गया। बाद में उनके दो पुत्र (भास्कर और दिनकर) और उत्पन्न हुए। इस प्रकार सपटणेकर दम्पति को अनुभव हो गया कि बाबा के वचन कभी असत्य और अपूर्ण नहीं निकले।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ४९ ।।

परीक्षा

(१) हरि कानोबा (२) सोमदेव स्वामी (३) नानासाहेब चाँदोरकर की कथाएँ।

प्रस्तावना

जब वेद और पुराण ही ब्रह्म या सद्गुरु का वर्णन करने मे अपनी असमर्थता प्रगट करते है तब मैं एक अल्पज्ञ प्राणी अपने सद्गुरु श्री साईबाबा का वर्णन कैसे कर सकता हूँ ? मेरा स्वयं का तो यह मत है कि इस विषय में मौन धारण करना ही अति उत्तम है। सच पूछा जाय तो मूक रहना ही सद्गुरु की विमल पताकारुपी विरुदावली का उत्तम प्रकार से वर्णन करना है। परन्तु उनमें जो उत्तम गुण हैं, वे हमें मूक कहाँ रहने देते है? यदि स्वादिष्ट भोजन बने और मित्र तथा सम्बधी आदि साथ बैठकर न खाएँ तो वह नीरस-सा प्रतीत होता है और जब वही भोजन सब एक साथ बैठकर खाते है, तब उसमें एक विशेष प्रकार की सुस्वादुता आ जाती है। वैसी ही स्थिति साईलीलामृत के सम्बन्ध में भी है। इसका एकांत में रसास्वादन कभी नहीं हो सकता । यदि मित्र और पारिवारिक जन सभी मिलकर इसका रस लें तो और अधिक आनन्द आ जाता है। श्री साााईबाबा स्वयं ही अंतःप्रेरणा कर अपनी इच्छानुसार ही इन कथाओं को मुझसे वर्णित करा रहे हैं। इसलिए हमारा तो केवल इतना ही कर्त्तव्य है कि अनन्यभाव से उनके शरणागत होकर उनका ही ध्यान करें । तप साधन, तीर्थ यात्रा, व्रत एवं यज्ञ और दान से हरिभक्त श्रेष्ठ है और सद्गुरु का ध्यान इन सबमें परम श्रेष्ठ है। इसलिए सदैव मुख से साईनाम का स्मरण कर उनके उपदेशों का निदिध्यासन एवं स्वरुप का चिन्तन कर हृदय में उनके प्रति सत्य और प्रेम के भाव से समस्त चेष्टाएँ उनके ही निमित्त करनी चाहिए। भवबन्धन से मुक्त होने का इससे उत्तम साधन और कोई नहीं । यदि उपर्युक्त विधि से कर्म करते जायें तो साई को विवश होकर हमारी सहायता कर हमें मुक्ति प्रदान करनी ही पड़ेगी। अब इस अध्याय की कथा श्रवण करें।

हरि कानोबा

बम्बई के हरि कानोबा नामक एक महानुभाव ने अपने कई मित्रों और संबन्धियों से साई बाबा की अनेक लीलाएँ सुनी थी, परन्तु उन्हें विश्वास ही न होता था ; क्योंकि वे संशयालु प्रकृति के व्यक्ति थे। अविश्वास उनके हृदयपटल पर अपना आसना जमाए हुए था। वे स्वयं बाबा की परीक्षा करने का निश्चय करके अपने कुछ मित्रों सहित बम्बई से शिरड़ी आये। उन्होंने सिर पर एक जरी की पगड़ी और पैरों में नए सैंडिल पहिन रखे थे। उन्होंने बाबा को दूर से ही देखकर उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम तो करना चाहा, परन्तु उनके नये सैंडिल इस कार्य में बाधक बन गए। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाए। तब उन्होंने अपने सैंडिल मंडप के एक सुरक्षित कोने में रखे और मस्जिद में जाकर बाबा के दर्शन किए। उनका ध्यान सैंडिलों पर ही लगा रहा। उन्होंने बड़ी नम्रतापूर्वक बाबा को प्रणाम किया और उनसे प्रसाद और उदी प्राप्त कर लौट आए । पर जब उन्होंने कोने में दृष्टि डाली तो देखा कि सैंडिल तो अंतर्द्धान हो चुके हैं। पर्याप्त छानबीन भी व्यर्थ हुई और अन्त में निराश होकर वे अपने स्थान पर वापस आ गए।

स्नान, पूजन और नैवद्य आदि अर्पित करके वे भोजन करने को तो बैठे, परन्तु वे पूरे समय तक उन सैंडिलो के चिन्तन में ही निमग्न रहे। भोजन कर मुँह-हाथ धोकर जब वे बाहर आए तो उन्होंने एक मराठा बालक को अपनी ओर आते देखा, जिसके हाथ धोने के लिए बाहर आने वाले लोगों से कहा कि बाबा ने मुझे यह डण्डा हाथ में देकर रास्तों में घूम-घूम कर '' हरि का बेटा जरी का फेंटा'' की पुकार लगाने को कहा है तथा जो कोई कहे कि सैंडिल हमारे हैं, उससे पहले यह पूछना कि क्या उसका नाम हरि और उसके पिता का 'क' (अर्थात् कानोबा) हैं? साथ ही यह भी देखना कि वह जरीदार साफा बाँधे हुए हैं, या नहीं , तब इन्हें उसे दे देना। बालक का कथन सुनकर हरि कानोबा को बेहद आनन्द व आश्चर्य हुआ। उन्होंने आगे बढकर बालक से कहा कि ये हमारे

ही सैंडिल हैं, मेरा ही नाम हरि और मैं ही 'क' (कानोबा) का पुत्र हूँ । यह मेरा जरी का साफा देखा । बालक सन्तुष्ट हो गया और सैंडिल उन्हें दे दी। उन्होंने सोचा कि मेरी जरीदार पगड़ी तो सब को ही दिख रही थी। हो सकता है कि बाबा की भी दृष्टि में आ गई हो। परन्तु यह मेरी शिरड़ी-यात्रा का प्रथम अवसर है, फिर बाबा को यह कैसे विदित हो गया कि मेरा ही नाम हरि है और मेरे पिता का कानोबा? वह तो कवल की परीक्षार्थ वहाँ आया था। उसे इस घटना से बाबा की महानता विदित हो गई । उसकी इच्छा पूर्ण हो गई और वह सहर्ष घर लौट गया।

सोमदेव स्वामी

अब एक दूसरे संशयालु व्यक्ति की कथा सुनिए, जो बाबा की परीक्षा करने आया था। काकासाहेब दीक्षित के भ्राता श्री. भाईजी नागपुर में रहते थे। जब वे सन् १९०६ में हिमालय गए थे, तब उनका गंगोत्री घाटी के नीचे हरिद्वार के समीप उत्तर काशी में एक सोमदेव स्वामी से परिचय हो गया। दोनों ने एक दूसरे के पते लिख लिये। पाँच वर्ष पश्चात् सोमदेव स्वामी नागपुर में आए और भाईजी के यहाँ ठहरे । वहाँ श्री साईबाबा की कीर्त्ति सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई तथा शिरड़ी जाकर बाबा के दर्शन करने की तीव्र उत्कंठा हुई । मनमाड़ और कोपरगाँव निकल जाने पर वे एक ताँगे में बैठकर शिरड़ी को चल पड़े। शिरड़ी के समीप पहुँचने पर उन्होंने दूर से ही मस्जिद पर दो ध्वज लहराते देखे। सामान्यतः देखने में आता है कि भिन्न-भिन्न सन्तों का बर्त्ताव, रहन-सहन और बाह्य सामग्रियाँ प्रायः भिन्न प्रकार की ही रहा करती हैं। परन्तु केवल इन वस्तुओं से ही सन्तों की योग्यता का आकलन कर लेना बड़ी भूल है। सोमदेव स्वामी कुछ भिन्न प्रकृति के थे। उन्होंने जैसे ही ध्वजों को लहराते देखा तो वे सोचने लगे कि बाबा सन्त होकर इन ध्वजों में इतनी दिलचस्पी क्यों रखते हैं? क्या इससे उनका सन्तपन प्रकट होता है? ऐसा प्रतीत होता है कि यह सन्त अपनी कीर्त्ति का इच्छुक है। अतएव उन्हांने शिरड़ी जाने का विंचार त्याग कर अपने सहयात्रियों से कहा कि मैं तो वापस लौटना चाहता हूँ । तब वे लोग कहने लगे कि फिर व्यर्थ ही इतनी दूर क्यों आए? अभी केवल ध्वजों को देखकर तुम इतने उद्विग्न हो उठे हो तो जब शिरडी में रथ, पालकी, घोड़ा और अन्य सामग्रियाँ देखोगे, तब तुम्हारी क्या दशा होगी? स्वामी को अब और भी अधिक घबराहट होने लगी और उसने कहा कि मैंने उनेक साधु-सन्तों के दर्शन किए हैं, परन्तु यह सन्त कोई विरला ही है, जो इस प्रकार ऐश्वर्य की वस्तुएँ संग्रह कर रहा है। ऐसे साधु के दर्शन न करना ही उत्तम है, ऐसा कहकर वे वापस लौटने लगे। तीर्थयात्रियों ने प्रतिरोध करते हुए उन्हें आगे बढ़ने की सलाह दी और समझाया कि तुम यह संकुचित मनोवृत्ति छोड़ दो। मस्जिद में जो साधु हैं, वे इन ध्वजाओं और अन्य सामग्रियों या अपनी कीर्त्ति का स्वप्न में भी सोचविचार नहीं करते। ये सब तो उनके भक्तगण प्रेम और भक्ति के कारण ही उनको भेंट किया करते हैं। अन्त में वे शिरड़ी जाकर बाबा के दर्शन करने को तैयार हो गए। मस्जिद के मंडप में पहुँच कर तो वे द्रवित हो गए । उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और कंठ रुँध गया। अब उनके सब दूषित विचार हवा हो गए और उन्हें अपने गुरु के शब्दों की स्मृति हो आई कि **''मन जहाँ अति प्रसन्न और आकर्षित हो जाय, उसी स्थान को ही अपना विश्रामधाम समझना।''** वे बाबा की चरण-रज में लोटना चाहते थे, परन्तु जब वे उनके समीप गए तो बाबा एकदम क्रोधित होकर जोर-जोर चिल्लाकर कहने लगे कि '' हमारा सामान हमारे ही साथ रहने दो, तुम अपने घर वापस लौट जाओ। सावधान। यदि फिर कभी मस्जिद की सीढ़ी चढ़े तो। ऐसे संत के दर्शन ही क्यों करना चाहिए, जो मस्जिद पर ध्वजाएँ लगाकर रखे? क्या ये सन्तपन के लक्षण हैं? एक क्षण भी यहाँ न रुको।'' अब उसे अनुभव हो गया कि बाबा ने अपने हृदय की बात जान ली है और वे कितने सर्वज्ञ हैं! उसे अपनी योग्यता पर हँसी आने लगी तथा उसे पता चल गया कि बाबा कितने निर्विकार और पवित्र हैं। उसने देखा कि वे किसी को हृदय से लगाते और किसी को हाथ से स्पर्श करते हैं तथा किसी को सान्त्वना देकर प्रेमदृष्टि से निहारते हैं। किसी को उदी प्रसाद देकर सभी प्रकार से भक्तों को सुख और सन्तोष पहुँचा रहे हैं तो फिर मेरे साथ ऐसा रुक्ष बर्त्ताव क्यों ? अधिक विचार करने पर वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसका कारण मेरे आन्तरिक विचार ही थे और इससे शिक्षा ग्रहण कर मुझे अपना आचरण सुधारना चाहिए। बाबा का क्रोध तो मेरे लिए वरदानस्वरुप है । अब यह कहना व्यर्थ ही होगा कि वे बाबा की शरण में आ गए और उनके एक परम भक्त बन गये।

नानासाहेब चाँदोरकर

अन्त में नानासाहेब चाँदोरकर की कथा लिखकर हेमाड़पंत ने यह अध्याय समाप्त किया है। एक समय जब नानासाहेब, म्हालसापति और अन्य लोगों के साथ मस्जिद में बैठे हुए थे तो बीजापुर से एक सम्भ्रान्त यवन परिवार श्री साईबाबा के दर्शनार्थ आया। कुलवन्तियों की लाजरक्षण भावना देखकर नानासाहेब वहाँ से निकल जाना चाहते थे, परन्तु बाबा ने उन्हें रोक लिया। स्त्रियाँ आगे बढ़ीं और उन्होंने बाबा के दर्शन किये। उनमें से एक महिला ने अपने मुँह पर से घूँघट हटाकर बाबा के चरणों में प्रणम कर फिर घूँघट डाल लिया। नानासाहेब उसके

सौंदर्य से आकर्षित हो गए और एक बार पुनः वह छटा देखने को लालायित हो उठे । नाना के मन की व्यथा जानकर उन लोगों के चले जाने के पश्चात् बाबा उनसे कहने लगे कि '' नाना, क्यों व्यर्थ में मोहित हो रहे हो? इन्द्रियों को अपना कार्य करने दो। हमें उनके कार्य में बाधक न होना चाहिए। भगवान् ने यह सुन्दर सृष्टि निर्माण की है। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसके सौन्दर्य की सराहना करें । यह मन तो क्रमशः ही स्थिर होता है और जब सामने का द्वार खुला है, तब हमें पिंछले द्वारे से क्यो प्रविष्ट होना चाहिए? चित्त शुद्ध होते ही फिर किसी कष्ट का अनुभव नहीं होता। यदि हमारे मन में कुविचार नहीं हैं तो हमें किसी से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं । नेत्रों को अपना कार्य करने दो। इसके लिये तुम्हें लज्जित तथा विचलित न होना चाहिए।'' उस समय शामा भी वहीं थे। उनकी समझ में न आया कि आखिर बाबा के कहने का तात्पर्य क्या है? इसलिए लौटते समय इस विषय में उन्होंने नाना से पूछा । उस परम सुन्दरी के सौन्दर्य को देखकर जिस प्रकार वे मोहित हुए तथा यह व्यथा जानकर बाबा ने इस विषय पर जो उपदेश उन्हें दिए, उन्होंने उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे कहकर शामा को इस प्रकार समझाया -''हमारा मन स्वभावतः ही चंचल है, पर हमें उसे लम्पट न होने देना चाहिए। इन्द्रियाँ चाहे भले ही चंचल हो जाएँ, परन्तु हमें अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण रखकर उसे अशांत न होने देना चाहिए । इन्द्रियाँ तो अपने विषयपदार्थों के लिए सदैव चेष्टा किया ही करती हैं, पर हमें उनके वशीभूत होकर उनके इच्छित पदार्थों के के समीप न जाना चाहिए। क्रमशः प्रयत्न करते रहने से इस चंचलता को नियंत्रित किया जा सकता है। यद्यपि उन पर पूर्ण नियंत्रण सम्भव नहीं है तो भी हमें उनके वशीभूत न होना चाहिये। प्रसंगानुसार हमें उनका वास्तविक रुप से उचित गति-अवरोध करना चाहिए। सौन्दर्य तो आँखें सेंकने का विषय है, इसलिये हमें निडर होकर सुन्दर पदार्थों की ओर देखना चाहिये। यदि हममें किसी प्रकार के कुविचार न आए तो इसमें लज्जा और भय की आवश्यकता ही क्या है। यदि मन को निरिच्छ बनाकर ईश्वर के सौन्दर्य को निहारो तो इन्दियाँ सहज और स्वाभाविक रुप से अपने वश में आ जाएँगी और विषयानन्द लेते समय भी तुम्हें ईश्वर की स्मृति बनी रहेगी । यदि उसे बाह्य इन्द्रियों के पीछे दौड़ने तथा उनमें लिप्त रहने दोगे तो तुम्हारा जन्म-मृत्यु के पाश से कदापि छुटकारा न होगा। विषयपदार्थ इंद्रियों को सदा पथभ्रष्ट करने वाले होते हैं। अतएव हमें विवेक को सारथी बनाकर मन की लगाम अपने हाथ में लेकर इन्दिय रुपी घोड़ों को विषयपदार्थों की ओर जाने से रोक लेना चाहिए। ऐसा विवेक रुपी सारथी हमें विष्णु-पद की प्राप्ति करा देगा, जो हमारा यथार्थ में परम सत्य धाम है और जहाँ गया हुआ प्राणी फिर कभी यहाँ नहीं लौटता ।''

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ५० ।।

(१) काकासाहेब दीक्षित, (२) श्री. टेंबे स्वामी और(३) बालाराम धुरन्धर की कथाएँ।

मूल सच्चरित्र के अध्यास ४३ और ४४ को हमने एक साथ सम्मिलित कर लिखा है, क्योंकि इन दोनों अध्यायों का विषय प्रायः एक-सा ही है। अब सच्चरित्र का अध्याय ५१ यहाँ ५० वें अध्याय के रुप में लिखा जा रहा है। इस अध्याय में (१) काकासाहेब दीक्षित, (२) टेंबे स्वामी और (३) बालाराम धुरन्धर की कथाएँ हैं।

प्रस्तावना

उन श्रीसाई महाराज की जय हो, जो भक्तों के जीवनाधार एवं सद्‌गुरु हैं। वे गीताधर्म का उपदेश देकर हमें शक्ति प्रदान कर रहे हैं। हे साई, कृपादृष्टि से देखकर हमें आशीष दो। जैसे मलयगिरि में होनेवाले चन्दनवृक्ष समस्त तापों का हरण कर लेता है अथवा जिस प्रकार बादल जलवृष्टि कर लोगों को शीतलता और आनन्द पहुँचाते हैं या जैसे वसन्त में खिले फूल ईश्वरपूजन के काम आते हैं, इसी प्रकार श्री साईबाबा की कथाएँ पाठकों तथा श्रोताओं को धैर्य एवं सान्त्वना देती हैं। जो कथा कहते या श्रवण करते हैं, वे दोनों ही धन्य हैं, क्योंकि उनके कहने से मुख तथा श्रवण से कान पवित्र हो जाते हैं।

यह तो सर्वमान्य है कि चाहे हम सैकड़ों प्रकार की साधनाएँ क्यों न करें, जब तक सद्‌गुरु की कृपा नहीं होती, तब तक हमें अपने आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति नहीं हो सकती । इसी विषंय में यह निम्नलिखित कथा सुनिये : -

काकासाहेब दीक्षित (१८६४-१९२६)

श्री हरि सीताराम उपनाम काकासाहेब दीक्षित सन् १८६४ में वड़नगर के नागर ब्राह्मण कुल में खण्डवा में पैदा हुए थे। उनकी प्राथमिक शिक्षा खण्डवा और हिंगणघाट में हुई । माध्यमिक शिक्षा नागपुर में उच्च श्रेणी में प्राप्त करने के बाद उन्होंने पहले विल्सन तथा बाद में एल्फिन्स्टन कॉलेज मे अध्ययन किया । सन् १८८३ में उन्होंने ग्रेज्युएट की डिग्री लेकर कानूनी (LL.B.)और कानूनी सलाहकार (Solicitor) की परीक्षाएँ पास कीं और फिर वे सरकारी सॉलिसिटर फर्म-मेसर्स लिटिल एण्ड कम्पनी में कार्य करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने स्वतः की एक सॉलिसिटर फर्म चालू कर दी।

सन् १९०९ के पहले तो बाबा की कीर्त्ति उनके कानों तक नहीं पहुँची थी, परन्तु इसके पश्चात् वे शीघ्र ही बाबा के परम भक्त बन गए। जब वे लोनावला में निवास कर रहे थे तो उनकी अचानक भेंट अपने पुराने मित्र नानासाहेब चाँदोरकर से हुई । दोनों ही इधर -उधर की चर्चाओं में समय बिताते थे। काकासाहेब ने उन्हें बताया कि जब वे लन्दन में थे तो रेलगाड़ी पर चढ़ते समय कैसे उनका पैर फिसला तथा कैसे उसमें चोट आई, इसका पूर्ण विवरण सुनाया । काकासाहेब ने आगे कहा कि मैंने सैकड़ों उपचार किये, परन्तु कोई लाभ न हुआ। नानासाहेब ने उनसे कहा कि यदि तुम इस लँगड़ेपन तथा कष्ट से मुक्त होना चाहते हो तो मेरे सद्‌गुरु श्री साईबाबा की शरण में जाओ। उन्होंने बाबा का पूरा पता बताकर उनके कथन को दुहराया कि **''मैं अपने भक्त को सात समुद्रों के पार से भी उसी प्रकार खींच लूँगा, जिस प्रकार कि एक चिड़िया को जिसका पैर रस्सी से बँधा हो, खींच कर अपने पास लाया जाता है।''**

उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि तुम बाबा के निजी जन न होगे तो तुम्हें उनके प्रति आकर्षण भी न होगा और न ही उनके दर्शन प्राप्त होंगे। काकासाहेब को ये बातें सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा, वे शिरडी जाकर बाबा से प्रार्थना करेंगे कि शारीरिक लँगड़ेपन के बदले उनके चंचल मन को अपंग बनाकर परमानन्द की प्राप्ति करा दें ।

कुछ दिनों के पश्चात् ही बम्बई विधान सभा (Legislative Assembly)के चुनाव में मत प्राप्त करने के सम्बन्ध में काकासाहेब दीक्षित अहमदनगर गए और सरदार काकासाहेब मिरीकर के यहाँ ठहरे । श्री. बालासाहेब मिरीकर जो कि कोपरगाँव के मामलतदार तथा काकासाहेब मिरीकर के सुपुत्र थे, वे भी इसी समय अश्वप्रदर्शनी देखने के हेतु अहमदनगर पधारे थे। चुनाव का कार्य समाप्त होने के पश्चात् काकासाहेब दीक्षित शिरड़ी जाना चाहते थे। यहाँ पिता और पुत्र दोनों ही घर में विचार कर रहे थे कि काकासाहेब के साथ भेजने के लिए कौन सा व्यक्ति उपयुक्त होगा और दूसरी ओर बाबा अलग ही ढंग से उन्हें अपने पास बुलाने का प्रबन्ध कर रहे थे। शामा के पास एक तार आया कि उनकी सास की हालत अधिक शोचनीय है और उन्हें देखने को वे शीघ्र ही अहमदनगर को आए । बाबा से अनुमति प्राप्त कर शामा ने वहाँ जाकर अपनी सास को देखा, जिनकी स्थिति में अब पर्याप्त सुधार हो चुका था। प्रदर्शनी को जाते समय नानासाहेब पानसे तथा अप्पासाहेब गद्रे की दृष्टि अचानक शामा पर पड़ी। उन्होंने शामा से मिरीकर के घर जाकर काकासाहेब दीक्षित से भेंट करने तथा उन्हें अपने साथ शिरडी ले जाने को कहा। उन्होंने शामा के आगमन की सूचना काकासाहेब दीक्षित और मिरीकर को भी दे दी । सन्ध्या समय शामा मिरीकर के घर आए। मिरीकर ने शामा का काकासाहेब दीक्षित से परिचय करा दिया और फिर ऐसा निश्चत हुआ कि काकासाहेब दीक्षित उनके साथ रात्र १० बजेवाली गाड़ी से कोपरगाव को रवाना हो जाएँ । इस निश्चय के बाद ही एक विचित्र घटना घटी। बालासाहेब मिरीकर ने बाबा के एक बड़े चित्र पर से परदा हटाकर काकासाहेब दीक्षित को उनके दर्शन कराये तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिनके दर्शनार्थ मैं शिरड़ी जाने वाला हूँ , वे ही इस चित्र के रुप में मेरे स्वागत हेतु यहाँ विराजमान हैं। तब अत्यन्त द्रवित होकर वे बाबा की वन्दना करने लगे । यह चित्र मेघा का था और काँच लगाने के लिए मिरीकर के पास आया था। दूसरा काँच लगवा कर उसे काकासाहेब दीक्षित तथा शामा के हाथा वापस शिरड़ी भेजने का प्रबन्ध किया गया। दस बजे से पहले ही स्टेशन पर पहुँचकर उन्होंने द्वितीय श्रेणी का टिकट ले लिया। जब गाड़ी स्टेशनपर आई तो द्वितीय श्रेणी का डिब्बा खचाखच भर हुआ था । उसमें बैठने को तिलमात्र भी स्थान न था।भाग्यवश गार्डसाहेब काकासाहेब दीक्षित की पहचान के निकल आए और उन्होंने इन दोनों को प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठा दिया। इस प्रकार सुविधापूर्वक यात्रा करते हुए वे कोपरगाँव स्टेशन पर उतरे । स्टेशन पर ही शिरड़ी को जानेवाले नानासाहेब चाँदोरकर को देखकर उनके हर्ष का पारावारा न रहा। शिरड़ी पहुँचकर उन्होंने मस्जिद में जाकर बाबा के दर्शन किए। तब बाबा कहने लगे कि '' मैं बड़ी देर से तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। शामा को मैंने ही तुम्हें लाने के लिए भेज दिया था।'' इसके पश्चात् काकासाहेब ने अनेक वर्ष बाबा की संगति में व्यतीत किए। उन्होंने शिरड़ी में एक वाड़ा (दीक्षित वाड़ा) बनवाया, जो उनका प्रायः स्थायी घर हो गया। उन्हें बाबा से जो अनुभव प्राप्त हुए , वे सब स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। पाठकों से प्रार्थना है कि वे श्री साईलीला पत्रिका के विशेषांक (काकासाहेब दीक्षित) भाग १२ के अंक ६-९ तक देखे । उनके केवल एक दो अनुभव लिखकर हम यह कथा समाप्त करेंगे। बाबा ने उन्हें आश्वासन दिया था कि अन्त समय आने पर बाबा उन्हें विमान में ले जाएँगे, जो सत्य निकला। तारीख ५ जुलाई, सन् १९२६ को वे हेमाडपंत के साथ रेल से यात्रा कर रहे थे । दानो में साईबाबा के विषय में बाते ं हो रहीं थी। वे श्री साईबाबा के ध्यान में अधिक तल्लीन हो गए, तभी अचानक उनकी गर्दन हेमाड़पंत के कन्धे से जा लगी और उन्होंने बिना किसी कष्ट तथा घबराहट के अपनी अंतिम श्वास छोड़ दी।

श्री. टेंबे स्वामी

अब हम द्वितीय कथा पर आते है; जिससे स्पष्ट होता है कि सन्त परस्पर एक दूसरे को किस प्रकार भ्रातृवत् प्रेम किया करते है। एक बार श्री वासुदेवानन्द सरस्वती, जो श्री. टेंबे स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं, ने गोदावरी के तीर पर राजमहेन्द्री में आकर डेरा डाला । वे भगवान् दत्तात्रेय के कर्मकांडी, ज्ञानी तथा योगी भक्त थे। नांदेड़ (निजाम स्टेट) के एक वकील अपने मित्रों के साथ उनसे भेंट करने आए और वार्त्तालाप करते-करते श्री साईबाबा की चर्चा भी निकल पड़ी। बाबा का नाम सुनकर स्वामीजी ने उन्हें करबद्ध प्रणाम किया और पुंडलकराव (वकील) को एक श्रीफल देकर उन्होंने कहा कि तुम जाकर मेरे भ्राता श्री साई को प्रणाम कर कहना कि न मुझे बिसरे तथा सदैव मुझ पर कृपा दृष्टि रखें । उन्होंने यह भी बतलाया कि सामान्यतः एक स्वामी दूसरे को प्रणाम नहीं करता, परन्तु यहाँ विशेष रुप से ऐसा किया गया है। श्री पुंडलीकराव ने श्रीफल लेकर कहा कि '' मैं इसे बाबा को दे दूँगा तथा आपका सन्देश भी कह दूँगा।'' स्वामी ने बाबा को जो ' भाई' शब्द से सम्बोधित किया था, वह बिलकुल ही उचित था। अधर स्वामी जी अपनी कर्मकांडी पद्धति के अनुसार दिनरात अग्निहोत्र प्रज्वलित रखते थे और इधर बाबा की धूनी दिनरात मस्जिद में जलती रहती थी।

एक मास के पश्चात् ही पुंडलीकराव अन्य मित्रों सहित श्रीफल लेकर शिरड़ी को रवाना हुए । जब वे मनमाड़ पहुँचे तो प्यास लगने के कारण एक नाले पर पानी पीने गए । खाली पेट पानी न पीना चाहिये, यह सोचकर उन्होंने कुछ चिवड़ा खाने को निकाला, जो खाने में कुछ अधिक तीखा-सा प्रतीत हुआ। उसका तीखापन कम करने के लिये किसी ने नारियल फोड़ कर उसमें खोपरा मिला दिया और इस तरह उन लोगों ने चिवड़ा स्वादिष्ट बनाकर खाया । अभाग्यवश जो नारियल उनके हाथ से फूटा, वह वही था, जो स्वामीजी ने पुंडलीकराव को भेंट में देने को दिया था। शिरड़ी के समीप पहुँचने पर उन्हें नारियल की स्मृति हो आई । उन्हें यह जानकर बड़ा ही दुःख हुआ कि भेंट स्वरुप दिए जाने वाला नारियल ही फोड़ दिया गया है। डरते-डरते और काँपते हुए वे शिरड़ी पहुँचे और वहाँ जाकर उन्होंने बाबा के दर्शन किए। बाबा को तो यहाँ नारियल के सम्बन्ध में स्वामी से बेतार का तार प्राप्त हो चुका था। इसीलिये उन्होंने पहले से ही पुंडलीकराव से प्रश्न किया कि '' मेरे भाई की भेजी हुई वस्तु लाओ। '' उन्होंने बाबा के चरण पकड़ कर अपना अपराध स्वीकार करते हुये अपनी चूक के लिये उनसे क्षमा याचना की। वे उसके बदले में दूसरा नारियल देने को तैयार थे, परन्तु बाबा ने यह कहते हुए उसे अस्वीकार कर दिया कि '' उस नारियल का मूल्य इस नारियल से कई गुना अधिक था और उसकी पूर्त्ति इस साधारण नारियल से नहीं हो सकती ।'' फिर वे बोले कि '' अब तुम कुछ चिन्ता न करो । मेरी ही इच्छा से वह नारियल तुम्हें दिया गया तथा मार्ग में फोड़ा है। तुम स्वयं में कर्त्तापन की भावना क्यों लाते हो ? **१** कोई भी श्रेष्ठ या कनिष्ठ कर्म करते समय अपने को कर्त्ता न जानकर अभिमान तथा अहंकार से परे होकर ही कार्य करो, तभी तुम्हारी द्रुत गति से प्रगति होगी। **२** कितना सुन्दर उनका यह आध्यात्मिक उपदेश था।

१. प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।। - गीता- ३/२७।।
२. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।। गीता ३ ।। १९।।

श्री बालाराम धुरन्धर (१८७८-१९२५)

सान्ताक्रूज, बम्बई के श्री. बालाराम धुरन्धर प्रभु जाति के एक सज्जन थे। वे बम्बई के उच्च न्यायालय में एडवोकेट थे तथा किसी समय शासकीय विधि विद्यालय (Govt Law School) बम्बई के प्राचार्य (Principal) भी थे। उनका सम्पूर्ण कुटुम्ब सात्विक तथा धार्मिक था। श्री. बालाराम ने अपनी जाति की योग्य सेवा की और इस सम्बन्ध में एक पुस्तक भी प्रकाशित कराई । इसके पश्चात् उनका ध्यान आध्यात्मिक और धार्मिक विषयों पर गया। उन्होंने ध्यानपूर्वक गीता, उसकी टीका ज्ञानेश्वरी तथा अन्य दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन किया । वे पंढरपुर के भगवान विठोबा के परम भक्त थे। सन् १९१२ में उन्हें श्री साईबाबा के दर्शनों का लाभ हुआ। छः मास पूर्व उनके भाई बाबुलजी और वामनराव ने शिरडी आकर बाबा के दर्शन किये थे और उन्होंने घर लौटकर अपने मधुर अनुभव भी श्री. बालाराम व परिवार के अन्य लोगों को सुनाए। तब सब लोगों ने शिरड़ी जाकर बाबा के दर्शन करने का निश्चय किया। यहाँ शिरडी में उनके पहुँचने के पूर्व ही बाबा ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि '' आज मेरे बहुत से दरबारीगण आ रहे हैं।'' अन्य लोगों द्वारा बाबा के उपरोक्त वचन सुनकर धुरन्धर परिवार को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपनी यात्रा के सम्बन्ध में किसी को भी इसकी पहले से सूचना न दी थी। सभी ने आकर उन्हें प्रणाम किया और बैठकर वार्त्तालाप करने लगे। बाबा ने अन्य लोगों को बतलाया कि '' ये मेरे दरबारीगण हैं, जिनके सम्बन्ध में मैंने तुमसे पहले कहा था।'' फिर धुरन्धर भ्राताओं से बोले कि '' मेरा और तुम्हारा परिचय ६० जन्म पुराना है।'' सभी नम्र और सभ्य थे, इसलिए वे सब हाथ जोड़े हुए बैठे-बैठे बाबा की ओर निहारते रहे। उनमें सब प्रकार के सात्विक भाव जैसे अश्रुपात, रोमांच तथा कण्ठावरोध आदि जागृत होने लगे और सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके पश्चात् वे सब अपने निवासस्थान पर भोजन को गए और भोजन तथा थोड़ा विश्राम लेकर पुनः मस्जिद में आकर बाबा के पाँव दबाने लगे। इस समय बाबा चिलम पी रहे थे। उन्होंने बालाराम को भी चिलम देकर एक फूँक लगाने का आग्रह किया ।यद्यपि अभी तक उन्होंने कभी धूम्रपान नहीं किया था, फिर भी चिलम हाथ में लेकर बड़ी कठिनाई से उन्होंनेएक फूँक लागाई और आदरपूर्वक बाबा को लौटा दी । बालाराम के लिए तो यह अनमोल घड़ी थी। वे ६ वर्षो से श्वास-रोग से पीड़ित थे, पर चिलम पीते ही वे रोगमुक्त हो गए। उन्हें फिर कभी यह कष्ट न हुआ । ६ वर्षो के पश्चात् उन्हें एक दिन पुनः श्वास रोग का दौरा आया । यह वही महापुण्यशाली दिन था, जब कि बाबा ने महासमाधि ली। वे गुरुवार के दिन शिरडी आये थे। भाग्यवश उसी रात्रि को उन्हें चावड़ी उत्सव देखने का अवसर मिल गया। आरती के समय बालाराम को चावड़ी में बाबा का मुखमंडल भगवान् पांडुरंग सरीखा दिखाई पड़ा

। दूसरे दिन कांकड़ आरती के समय उन्हें बाबा के मुखमंडल की प्रभा अपने परम इष्ट भगवान् पांडुरंग के सदृश ही पुनः दिखाई दी।

श्री. बालाराम धुरन्धर ने मराठी में महाराष्ट्र के महान् सन्त तुकाराम का जीवनचरित्र लिखा है, परन्तु खेद है कि पुस्तक प्रकाशित होने तक वे जीवित न रह सके । उनके बन्धुओं ने इस पुस्तक को सन् १९२८ में प्रकाशित कराया। इस पुस्तक के प्रारम्भ में पृष्ठ ६ पर उनकी जीवनी से सम्बन्धित एक परिक्षेपक में उनकी शिरड़ी यात्रा का पूरा वर्णन है।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ५१ ।।

उपसंहार :

अध्याय - ५१ पूर्ण हो चुका है और अब अन्तिम अध्यय (मूल ग्रन्थ का ५२ वाँ अध्याय) लिखा जा रहा है। इसमें हेमाड़पंत ने अन्तिम समालोचना की है और उसी प्रकार सूची लिखने का वचन दिया है, जिस प्रकार कि अन्य मराठी धार्मिक काव्यग्रन्थों में विषय की सूची अन्त में लिखी जाती है। अभाग्यवश हेमाड़पंत के कागजपत्रों की छानबीन करने पर भी वह सूची प्राप्त न हो सकी। तब बाबा के एक योग्य तथा धार्मिक भक्त ठाणे के अवकाशप्राप्त मामलतदार श्री. बी.व्ही. देव ने उसे रचकर प्रस्तुत किया। पुस्तक के प्रारम्भ में ही विषयसूची देने तथा प्रत्येक अध्याय में विषय का संकेत शीर्षक स्वरुप लिखना ही आधुनिक प्रथा है, इसलिए यहाँ अनुक्रमणिका नहीं दी जा रही है। अतः इस अध्याय को उपसंहार समझना ही उपयुक्त होगा। अभाग्यवश हेमाड़पंत उस समय तक जीवित न रहे कि वे अपने लिखे हुए इस अध्याय की प्रति में संशोधन करके उसे छपने योग्य बनाते।

श्री सद्‌गुरु साई की महानता

'' हे साई, मै आपकी चरण वन्दना कर आपसे 'शरण' की याचना करता हूँ, क्योंकि आप ही इस अखिल विश्व के एकमात्र आधार हैं। '' यदि ऐसी ही धारणा लेकर हम उनका भजन-पूजन करें तो यह निश्चत है कि हमारी समस्त इच्छायें शीघ्र पूर्ण होंगी और हमें अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाएगी। आज निन्दित विचारों के तट पर माया-मोह के झंझावात से धैर्य रुपी वृक्ष की जड़ें उखड़ गई हैं। अहंकार रुपी वायु की प्रबलता से हृदय रुपी समुद्र में तूफान उठ खड़ा हुआ है, जिसमें क्रोध और घृणा रुपी घड़ियाल तैरते हैं और अहंभाव एवं सन्देह रुपी नाना संकल्प-विकल्पों की संतत भँवरों में निन्दा, घृणा और ईर्ष्यारुपी अगणित मछलियाँ विहार कर रही हैं। यद्यपि यह समुद इतना भयानक है तो भी हमारे सद्‌गुरु साई महाराज उसमें अगस्त्य स्वरुप ही हैं। इसलिए भक्तों को किंचित्‌मात्र भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। हमारे सद्‌गुरु तो जहाज हैं और वे हमें कुशलतापूर्वक इस भयानक भव -समुद्र से पार उतार देंगे ।

प्रार्थना

श्री सच्चिदानंद साई महाराज को साष्टांग नमस्कार करके उनके चरण पकड़ कर हम सब भक्तों के कल्याणार्थ उनसे प्रार्थन करते हैं कि '' हे साई! हमारे मन की चंचलता और वासनाओं को दूर करो। हे प्रभो! तुम्हारे श्रीचरणों के अतिरिक्त हममें किसी अन्य वस्तु की लालसा न रहे । तुम्हारा यह चरित्र घर-घर पहुँचे और इसका नित्य पठन-पाठन हो और जो भक्त इसका प्रेमपूर्वक अध्ययन करें, उनके समस्त संकट दूर हों ।

फलश्रुति (अध्ययन का पुरस्कार)

अब इस पुस्तक के अध्ययन से प्राप्त होने वाले फल के सम्बन्ध में कुछ शब्द लिखूँगा। इस ग्रन्थ के पठन-पाठन से मनोवांछित फल की प्राप्ति होगी। पवित्र गोदावरी नदी में स्नान कर, शिरड़ी के समाधि मन्दिर में श्री साईबाबा की समाधि के दर्शन कर लेने के पश्चात् इस ग्रन्थ का पठन-पाठन या श्रवण प्रारम्भ करोगे तो तुम्हारी तिगुनी आपत्तियाँ भी दूर हो जायेंगी। समय -समय पर श्री साईबाबा की कथा-वार्त्ता करते रहने से तुमहें आध्यत्मिक जगत् के प्रति अभिरुचि हो जाएँगी और यदि तुम इस प्रकार नियम तथा प्रेमपूर्वक अभ्यास करते रहे तो तुम्हारे समस्त पाप अवश्य नष्ट हो जायेंगे । **यदि संचमुच ही तुम आवागमन से मुक्ति चाहते हो तो तुम्हें साई कथाओं का नित्य पठन-पाठन, स्मरण और उनके चरणों में प्रगाढ़ प्रीति रखनी चाहिये । १ साई कथारुपी समुद्र का मंथन कर उसमें से प्राप्त रत्नों का दूसरों को वितरण करो,** जिसे से तुम्हें नित्य नूतन आनन्द का अनुभव होगा और श्रोतागण अधःपतन से बच जाएगे । यदि भक्तगण अनन्य भाव से उनकी शरण आयें तो उनका ''मैं'' नष्ट होकर बाबा से अभिन्नता प्राप्त हो जाएँगी, जैसे कि नदी समुद्र में मिल जाती है। यदि तुम तीन अवस्थाओं (अर्थात् -जागृति , स्वप्न और निद्रा) में से किसी एक में भी साई-चिन्तन में लीन हो जाओ तो तुम्हारा सांसारिक चक्र से छुटकारा हो जाएगा

। स्नान कर प्रेम और श्रद्धायुक्त होकर जो इस ग्रन्थ का एक सप्ताह में पठन समाप्त करेंगे, उनके सारे कष्ट दूर हो जाएँगे २ या जो इसका नित्य पठन या श्रवण करेंगे, उन्हें सब भयों से तुरन्त छुटकारा मिल जाएगा।

२. सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्य युक्ताउपासते ।। गीता ९ ।।१४।।

इसके अध्ययन से हर एक को अपनी श्रद्धा और भक्ति के अनुसार फल मिलेगा। परन्तु इन दोनों के अभाव में किसी भी फल की प्राप्ति होना संभव नहीं है। यदिं तुम इस ग्रन्थ का आदरपूर्वक पठन करोगे तो श्री साई प्रसन्न होकर तुम्हें अज्ञान और दरिद्रता के पाश से मुक्त कर, ज्ञान, धन और समृद्धि प्रदान करेंगे। यदि एकाग्रचित्त होकर नित्य एक अध्याय ही पढ़ोगे तो तुम्हें अपरिमित सुख की प्राप्ति होगी। इस ग्रन्थ को अपने घर पर गुरु-पूर्णिमा, गोकुल अष्टमी, रामनवमी, वियादशमी और दीपावली के दिन अवश्य पढ़ना चाहिए। यदि ध्यानपूर्वक तुम केवल इसी ग्रन्थ का अध्ययन करते रहोगे तो तुम्हें सुख और सन्तोष प्राप्त होगा और सदैव श्री साई चरणारविंदों का स्मरण बना रहेगा और इस प्रकार तुम भवसागर से सहज ही पार हो जाओगे । इसके अध्ययन से रोगियों को स्थास्थ्य, निर्धनों को धन, दुःखित और पीड़ितों को संपन्नता मिलेगी तथा मन के समस्त विकार दूर होकर मानसिक शान्ति प्राप्त होगी।

मेरे प्रिय भक्त और श्रोतागण ! आपको प्रणाम करते हुए मेरा आपसे एक विशेष निवेदन है कि जिनकी कथा आपने इतने दिनों और महीनों से सुनी है, उनके कलिमलहारी और मनोहर चरणों को कभी विस्मृत न होने दें । जिस उत्साह, श्रद्धा और लगन के साथ आप इन कथाओं का पठन या श्रवण करेंगे, श्री साईबाबा वैसे ही सेवा करने की बुद्धि हमें प्रदान करेंगे । लेखक और पाठक इस कार्य में परस्पर सहयोग देकर सुखी होवें।

प्रसाद-याचना

अन्त में हम इस पुस्तक को समाप्त करते हुए सर्वशक्तिमान परमात्मा से निम्नलिखित कृपा या प्रसादयाचना करते हैं-'' हे ईश्वर ! पाठकों और भक्तों को श्री साई-चरणों में पूर्ण और अनन्य भक्ति दो। श्री साई का मनोहर स्वरुप ही उनकी आँखों में सदा बसा रहे और वे समस्त प्राणियों में देवाधिदेव साई भगवान् का ही दर्शन करें । एवमस्तु । ''

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु।।

सप्ताहे पारायणः सप्तम विश्राम

।। ॐ श्री साई यशःकाय शिरडीवासिने नमः

समाप्त